युगलसम्वाद

جوگل سمباد

बोध प्रकाश

जिसमें

योगवाशिष्ठादि वेदान्त ग्रन्थों का सार मत गुरु शिष्य के प्रश्नोत्तरों सहित तथा भगवद्गीतादि के प्रमाणों से भूषित है

जिसको

महात्मा युगलकिशोर मुक़ामसिकंदराबादज़िलाबुलन्दशहर ने अतीव परिश्रम से वेदान्त दर्शियों के उपकारार्थ वर्णन किया है

वही

प्रथमबार

स्थानलखनऊ

मुन्शी नवलकिशोर के छापेखाने में छपा

नवम्बर सन १८८४ ई०

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

विज्ञप्ति

इस महीने अर्थात् नवम्बर सन् १८८४ ई० पर्यन्त जो पुस्तकें बेचने के लिये तय्यार हैं वह इस फ़ेहरिस्त में लिखी हैं और उन का मोल भी बहुत किफ़ायत से घटा कर लिखा है परन्तु व्यापारियों के लिये और भी सस्ती होंगी जिन को व्यापार की इच्छा हो वह छापेख़ाने के मुहतमिम अथवा मालिक के नाम ख़त भेजकर क़ीमत का निर्णय कर लें॥

नाम किताब	नाम किताब	नाम किताब	नाम किताब
भाषा इतिहास	वासिक पर्व्व मौ-	१० शान्तिपर्व्व राजध	१०-गदा पर्व्व
महाभारत	सल पर्व्व व मा	र्म व आपद्धर्म व	११-शान्तिपर्व्व
१-पहिले हिस्सा में	न प्रस्थान स्वर्गा	मोक्षधर्म व दान ध	१२ स्त्री पर्व्व
आदि पर्व्व सभा पर्व्व	रोहण पर्व्व	र्म	रामायण रामविला
वनपर्व्व	हरिवंश पर्व्व	२१-अश्वमेध आश्रम-	स
२-दूसरे हिस्सा में	महाभारत पर्व्व	वासिक मुसल पर्व्व	रामायण तुलसीकृ-
विराट पर्व्व उद्योगप-	अलेहदा भी हैं	महाप्रस्थान स्वर्गा	रामायण सटीक म
र्व्व भीष्मपर्व्व द्रोण	१-आदि पर्व्व	रोहण	यमानस दीपिका
पर्व्व	२-सभापर्व्व	२२ हरिवंशपर्व्व	कोस आदि
३-तीसरे हिस्सा में	३-वनपर्व्व	महाभारत सवल-	तथा जिल्दबन्धी
कर्णपर्व्व शल्यप-	४-विराट पर्व्व	सिंह	तथा मोटे अक्षरों की
र्व्व गदापर्व्व सौप्तिक	५-उद्योग पर्व्व	१-आदिपर्व्व	अयतनसवीरक्षेपक
पर्व्व येशिक पर्व्व	६-भीष्म पर्व्व	२-सभा पर्व्व	रामायण तुलसी कृ-
विशोक पर्व्व स्त्रीप-	७-द्रोण पर्व्व	३-वनपर्व्व	त सातों काण्ड
र्व्व शान्ति पर्व्व मेंरा-	८-कर्ण पर्व्व	४-विराट पर्व्व	१ बालकाण्ड
जधर्म आपद्धर्म	९-शल्य पर्व्व	५-उद्योग पर्व्व	२-अयोध्याकाण्ड
मोक्षधर्म	व गदा पर्व्व सौप्ति-	६-भीष्म पर्व्व	३-आरण्यकाण्ड
४-चौथे हिस्सा में	क पर्व्व मय येशि-	७-द्रोणपर्व्व	४-किष्किन्धाकाण्ड
शान्तिपर्व्व दानध-	क व विशोक व	८-कर्णपर्व्व	५-सुन्दरकाण्ड
र्म अश्वमेध आश्रम	स्त्री पर्व्व	९-शल्य पर्व्व	६-लंका काण्ड

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भूमिका

दोहा

शिव स्वरूप करुणा भवन श्री गुरु ज्ञान निधान।
आदि शक्ति भुवनेश्वरी सतचित आनँद खानि।१
परम तत्त्व शिव शक्ति अज सो श्री सीता राम ॥०॥
करहुं युगल पद पद्म रज बहुविधि विनय प्रणाम।२

तदनन्तर यह अधम देह युगल किशोर शरण जिसको लोग मुन्शी (जगतकिशोर) भी कहते हैं पुत्र रायहरकिशोर पौत्र राय नवलकिशोर कायस्थ वंशावतंस भटनागर चित्रगुप्त वंशी वासी सिकन्दराबाद ज़िले बुलन्दशहर का यह प्रार्थना करता है यद्यपि यह शरीर कामादिक रत मन्दमति विद्या और शुभ गुण रहित है संव्वत १९१६ तक चालीस वर्ष अपनी आयु के गृहस्थाश्रम और उद्यम नौकरी सरिश्तेदारी आदिक ज़िले अजमेर और नीमच में खोये तदपि श्रीजी की कृपा करके संव्वत् १९१७ से प्रयागराज और मथुराजी और अयोध्या जी काशी जी का निवास जो प्राप्त होता रहा और इन उत्तम देशों में लाभ सत्संग महात्माओं का और श्रवण पाठ श्रीरामायण और गीताजी और योगवाशिष्ठ आदिक का।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

بیوم کا جوگل بھاد ۔ ۲

बनारखला गया अपने दुष्ट मन के हित और सज्जनों जिज्ञासियों के आनन्द के हेतु परमेश्वर के गुणानुवाद को एक अंग भक्ति का समझ भाषा उर्दू में राम चरित्र और अर्थ गीता जी और पद विनय वंदना में कुछ २ लिखता भी रहा उन मसौदात में से एक यह चिट्ठा वेदान्त के संग्रह में भी प्रश्नोत्तर करके सम्व- त् १९३८ में हो गया और युगल सम्वाद बोध प्रकाश नाम। रक्खा गया यद्यपि यह अध्यात्म विद्या अनधिकारियों से छिपावने योग्य भी है परन्तु इस काल में अन्तःकरण की शुद्धि के कार- ण विद्या और वेदोक्त उपासना सुकृति शुभ साधन बहुत क- म हो गये हैं और वेद शास्त्र का पढ़ना और उस के तात्पर्य्य की समझ वृत्तियों में वर्त्ताव करना घटगया तौ संक्षेप वार्तिक भाषा उर्दू में लाभकारी परमार्थ का और अन्तःकरण की शुद्धि का हेतु जाना गया इस करके और सज्जनों की रुचि प्रेरित होने के कारण और मुन्शी नवलकिशोर साहब की तवज्जुह करके सम्वत १९४० में नागरी मतबे अवध अखबार में छापा गया सब साहि- बों की खिदमत में प्रार्थना करता हूं कि जिस को अपने परिणाम सुधारने की इच्छा और श्रद्धा हो सो लेकर इहतियात से रक्खें और एकान्त में विचार कर शुभ साधन भक्ति युक्त होय अपने नि- ज स्वरूपानंद में निमग्न हों हे सच्चिदानन्दघन दया सदन वक्ता श्रोता पर कृपा दृष्टि करके विमलता अन बुद्धि की दीजे और अपरा- ध क्षमा करना शुभ मंगल मस्तु ॥ इति ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

श्रीगणेशायनमः

युगलसम्वादबोधप्रकाश

दोहा

सतचित आनँद रूप तुम तुम्हीं गुरू तुम देव।
नित्य शुद्ध सर्वज्ञ इक निर्गुण सगुण अभेव॥
सकल प्रकाशक राम तुम तुम को शीश नवाय॥
युगलदास मति हित कहत गुरुजन वचन सुनाय॥

जिस देह में कि मोहरूपी निद्रा से जागने का उपाय और भवसागर दुःख क्लेश के भरे डूबे से सुख के किनारे पर पहुंचने का साधन बन सक्ता है वह यही मनुष्य देह है दूसरे शरीर में कुछ नहीं बनता - सो यह मनुष्य तनु अति दुर्लभ है सभे सिर धर्म के समूह के फल करके परमेश्वर की कृपा करके प्राप्त होता है इस बात को आवश्य शोचना चाहिये कि परमेश्वर के ज्ञान भक्ति रूपी मन की प्राप्ति में यत्न नहीं करना और बिषयादिक काच के ही खिलौनों दुःख

प्रनाभी में वृथा आयु व्यतीत कर क्लेश सहना और अमृत को छोड़ विषय रूपी विष को पीते रहना कितना अनर्थ और जन्माजन्म दुःखों का भोगना है। यद्यपि समस्त प्राणी सुख को चाहते हैं दुःख की इच्छा किसी को नहीं होती परन्तु अज्ञान करके उलटा दुःखों का ही उपाय करते रहते हैं नित्य सुख का उपाय नहीं करते जो वस्तु कि उपाय करके सिद्ध होती है और शोच विचार के योग्य है उस से सर्वथा अशोच रहते हैं और जो वस्तु बिना उपाय सिद्ध है उस के शोच और उपाय में अहर्निश आयु गवांय मायाकृत भ्रम रूपी कारागृह में बंदी वान हुवे बारम्बार जरा मरण जन्मादिक के दुःख और क्लेश भोगा करते हैं यही संसार एक कारागृह चौरासी लाख कोठरी वाला है जिस में यह चिदाभास भ्रम अविद्या मय अहं मानता हुवा जिस को जीव कहते हैं अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को भूल कर और परमात्मा से विमुख होकर चोरी विषय भोगादिक का अपराधी हो बन्दी वान हुआ है ममता वासना की बेड़ी पावों में राग द्वेष की हथकड़ी हाथों में इन्द्री और इन्द्रियों के देवता जो चौकी पहरे वाले देह में स्थित हैं निकलने नहीं देते हैं उस कारागृह के

दरवाज़े मे मिला हुआ एक यही मकान मनुष्य शरीर है जहां आय कर बन्द का दुख मुक्त का सुख समझ कर यत्न कर सक्ता है परन्तु परदा अविद्या और मोह का जो पड़ा हुवा है उस को उठा कर निकल नहीं सक्ता है न उपाय काटने बेड़ी ममता बासना का करता है न वह आंखें हैं जो कारागृह का द्वार उस को सूझै मोह विवश होकर अपने को बन्दी वान भी नहीं जानता है जब आगे को बढ़ा अंतःकरण की मलीनता कर और आलस्य करके इन्द्री विवश हुवा द्वार से हट कर फिर उसी चौरासी लाख के चक्र में जा परता है बन्दीवान् को चाहिये कि शीघ्र इस कारागृह के पहरे वालों को जो मन इन्द्रियादिक और उन के देवता हैं मिलावट विचारादिक से अपने वश में करै और सद्गुरु-रूपी लुहार को तलाश करके उन के वैराग्यादिक उपदेश रूपी छैनी से वासना ममता रूपी बेड़ी और हथकड़ी को काटकर कारागृह के द्वार से परदा मोह अविद्या को उठा कर बाहर निकल जाय इस उपाय में भगवत् भक्ति का आश्रय अवश्य है कि सबब से कि इस कलि काल में तप यज्ञ योगाभ्यासादिक दुस्तर हैं परमेश्वर की आराधना और निष्काम भक्ति का सहारा सुगम है जिस से मन इन्द्रियों का निरोध और वैराग्य की

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उत्पत्ति और अन्तःकरण की शुद्धता का लाभ हो-
सक्ता है क्योंकि बिना एकाग्रता मन के और बिना
वैराग्य की प्राप्ति और स्थिरता आत्मज्ञान की कठि-
न है प्रथम सात्व की श्रद्धा और शुभ इच्छा का हृ-
दय में जमाना चाहिये फिर शुभकर्म वर्णाश्रम वेद
विहित काम्य और निषेध को त्याग के करे और नवधा
भक्ति को जिस की रीति आगे कहेंगे साधे और जो सा-
धन अन्तरंग और बहिरंग वेद ने कहे हैं वे भी लिखे
जाते हैं प्रथम सीढ़ी बहिरंग साधन की ये हैं सात्वकी
तप १ सात्वकी दान २ सात्वकी यज्ञ ३ और
अष्टांग योग जिस में यम नियम, प्राणायाम, धारणा।
आसन, मुद्रा, समाधि हैं ४ भगवत् भजन पूजन स्म-
रण कीर्त्तनादिक ५ ब्रह्मचर्य्य शौच६ सत्संग गुरु
साधु सेवा ७ नित्य नैमित्त कर्म वेदानुसार ८ और
आठ८ अन्तरंग साधन ये हैं नित्य अनित्य वस्तु का
विवेक १ दोनों लोक के फल भोग से वैराग्य २ शम
दम, उपरति तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान ३ मुमुक्षुता ४ श्र-
वण सत शास्त्र ५ मनन ६ निदिध्यासन ७ महावा-
क्य को शोधन ८ मनुष्य को चाहिये कि उपाय, पाल-
न, पोषण अपनी देह और गृहस्थ का सन्तोष वृत्ति
करके प्रारब्ध पर छोड़े क्योंकि प्रारब्ध और आयु।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

शरीरों के पालन और रक्षा करने वाले हैं सो वो प्रारब्ध संचित पूर्व कर्म करके होती है जिस को पहिले कर चुका है दुबारा शोच और साधन करना वृथा है प्रारब्धानुसार भोजन वस्त्रादिक सुख दुःख हानि लाभ सब जगह सब को समय पर मिलैगा अनाश्रित जो क्रिया भोग आगे आगया उस को बिना राग द्वेष के और बिना हर्ष शोक के संतोष पूर्व्वक भोग लेना चाहिये मन को निश्चल करके अपनी देह को अपनी प्रारब्ध पर और अपने कुटुम्ब को उन के प्रारब्ध पर छोड़ कर यह करे कि निषेध और काम्य कर्म की तरफ़ मन और तन को जाने न दे और दूसरे सुकर्म वेद विहित नित्य नैमित्त भगवत् भजनादिक का भक्ति सहित बिना फल की चाह के नेम रक्खे तीसरे सत्संग साधु सेवा सत्त्व शास्त्र का श्रवण करता रहे और मनन और विचार को बढ़ाता जाय और सद्गुरु ब्रह्म वेत्ता की तलाश में रहे सद्गुरु ब्रह्म वेत्ता के लक्षण ये हैं अहंकार काम क्रोध लोभ मोह राग द्वेष का हृदय में अंश न होय १ जीव ब्रह्म की एकत्वता निश्चय करिकै जानै २ वेद के तात्पर्य्य को पहिंचानै ३ ज्ञान तत्पर दयावान् परोपकारी समान चित्त हो ऐसा गुरू शिष्य के संशय विपर्य्य को अज्ञान सहित दूर कर सक्ता है संशय

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

शक और वहम को कहते हैं विपर्य्य: प्रतिकूल स-
मझने को कहते हैं अज्ञान न जानने को कहते हैं
जो अपने आत्मा स्वरूप को न जाने उससे तात्पर्य्य
अन्यथा भान का है कि वा सत्व में रस्सी है उस को
तिमिर और नेत्र के विकार करके साँप दिखाई देता
है और वही गुरु शिष्य के हृदय का क्लेश जो पांच
प्रकार का है और ५ पांच प्रकार के भेद को दूर करस-
का है ५ पांच क्लेश ये हैं अविद्या १ राग २ द्वेष ३ अ-
स्मता ४ अभिनिवेश ५ अविद्या चार ४ प्रकार की है
अनित्य में नित्य बुद्धि अपवित्र में पवित्र बुद्धि दुःख में
सुख बुद्धि अनात्मा में आत्म बुद्धि राग के अर्थ स्वा-
र्थ और प्रीति के हैं इष्ट वस्तु में द्वेष वैर भाव प्रति-
कूल अर्थ में जिस को अप्रिय दुःख रूप जाने हैं अस्म-
ता द्रष्टा और अदृश्य का न जानना और चित्त की वि-
क्षेपता हो और निरोध न हो अभिनिवेश इस को कह-
ते हैं कि वस्तु को मिथ्या जाने तो भी उस में आग्रह
बना रहे और ५ पांच प्रकार के भेद ये हैं चैतन्य और
जड़ का भेद जीव ईश्वर का भेद जीवों का परस्पर भेद
जीव जड़ का भेद ऐसे गुरु गृहस्थी हों अथवा विरक्त
हों शिष्य के दोष हरि के बोध करासके हों गृहस्थी म-
हात्मा भी याज्ञवल्क्य उद्दालक वशिष्ठ जनकादिक

हुये हैं और आचार्य्य ब्रह्मनिष्ठ तो हो परन्तु वेद प-
ढ़ा न हो सो आप तो मुक्त हैं और उत्तमाधिकारी शुद्ध
अन्तःकरण वाले को भी उपदेश कर आवरण दूर
कर सक्ता है परन्तु मध्यम और कनिष्ठ अधिकारी
मलीन अन्तःकरण के संशय विपर्य्य क्लेश और
भेद युक्तियों करके दूर नहीं कर सक्ता है शुद्ध अन्तः-
करण के अर्थ ये हैं कि प्राणी के हृदय में से जो चैत-
न्य की सत्ता करके वृत्ती उठती है वो चार प्रकारकी
होती है संकल्प विकल्प वृत्ति का तो नाम मन है।
उसका धर्म क्रिया उपजाने का है जानना निश्चय रू-
पी वृत्ति को बुद्धि कहते हैं उसका धर्म ज्ञान उपजा-
ने का है चित्त और अहंकार यद्यपि इन दोनों में १
युक्त है परन्तु स्वरूप इन दोनों का भी जुदा
जुदा है चित्त रूपी वृत्ति भंडारे की नाईं है उस में से
स्मरण और वासना आती जाती है मैं हूं और ये स्त्री
पुत्र धन धाम मेरे हैं मुझ को दुख सुख है ये मैंने किया यह क-
रूंगा इस वृत्ती को अहंकार कहते हैं ये चारो अन्दर
हृदय में सूक्ष्म शरीर के क्रिया करने वाले सुख दुःख
हर्ष शोक भोगाने वाले अन्तःकरण कहलाते हैं उ-
स के आज्ञाकारी दश इन्द्रियां हैं चक्षु श्रोत्र त्वचा
नासिका जिह्वा ये पांच ५ ज्ञानेन्द्रियां कहलाती हैं

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ये सतो गुण के अंश से हैं जिस से पदार्थ का जानना होता है हाथ पांव वाक् उपस्थ गुदा ये पांच कर्म इन्द्री हैं रजो गुण के अंश से हैं जिन से क्रिया होती है सो इस अन्तःकरण में ३ तीन दोष होते हैं मल १ विक्षेप २ आवरण ३ मल मैल को कहते हैं पिछले अशुभ कर्म जनित अशुभ वासना तमोगुण मोहमय होता है विक्षेप चित्त चिकलता रज तम काम क्रोध मय होता है आवरण पर्दे को कहते हैं वर्ण आश्रम कर्म वेदानुसार निष्काम करने से मल दूर होता है उपासना से विक्षेप दूर होता है उस का तात्पर्य्य मन की एकाग्रता से है आवरण ज्ञानात्मा से दूर होता है इन तीनों के वास्ते वेद रचे गये हैं जिन की संख्या एक लाख श्लोक की है जिन में ८०००० अस्सी हज़ार कर्म काण्ड १६००० हज़ार उपासना ४००० चार हज़ार वेदान्त उपनिषद हैं ये वेद तीनों दोष के मानों वैद्यक निदान हैं कर्म काण्ड रोचक और भयानक हैं जैसे बालक को उस के माता और पिता लालच और भय दिखलाकर लिखना पढ़ना और व्यवहार सिखलाते हैं अथवा रोगी बालक को माता मीठी चीज़ दिखलाकर कड़वी दवा पिला देती है और भय दिखलाकर कुपथ से हटाती है माता का तात्पर्य्य मीठे खिलाने और ताड़ना करने में नहीं है बालक के

रोग के नाश में है मूर्ख जन कडुवी दवा नहीं पीवते हैं।
मीठे के लालच में यद्यपि मार खाते हैं दुःखों को सहते हैं
परन्तु कुपथ नहीं छोड़ते हैं ता करके कुशल कल्याण
को प्राप्त नहीं होते और ऐसे मूर्ख रोगी अपने अपने
रोगों को और उन के परिणाम को भी जानते नहीं कर्म
की परिपक्व उपासना है उपासना का परिणाम ज्ञा-
न है आवर्ण तो क्षण मात्र में ही गुरु के उपदेश से दूर
हो जाता है सो जो शिष्य ऐसा है जिस में सुकर्म नि-
ष्काम और उपासना से पूर्व जन्म संस्कार करके अ-
थवा वर्त्तमान में साधन करके अपना अन्तस्करण
शुद्ध कर लिया है फिर उस को आचार्य्य ज्ञान नए
शीघ्र कृतार्थ कर सक्ता है इस काल में मलीन अन्तस
वाले बहुत हैं जिन से शुभ कर्म और उपासना का-
प्रयत्न तो नहीं बन सक्ता काहे से कि विषय लोलुपता और मम-
ता राग द्वेष छोड़ा नहीं जा सक्ता है विचार करते नहीं
कथन मात्र आप को ज्ञानी मान कर परस्पर बाद किया
करते हैं ता कारण अनर्थ दुःख संसृति की निवृत्ति और
परमानन्द की प्राप्ति उन को होती नहीं जो पानी पानी
कहने से प्यास दूर हो जाय अथवा प्रज्वलित अग्नि शां-
त्त होजाय तौ वे जन भी परम पद पावें किमालिये कि ता-
त्पर्य्य तौ मल विक्षेपादिक रोग जो मन बुद्धि में हैं उन के।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मिटाने और वासना के दूर करने से है जब ये उपाधी दूर हुईं तो आप निर्मल शुद्ध सच्चिदानन्द घन सुप्रकाश है कहो अथवा न कहो जब तक ये अनर्थ विकार दूर नहीं होते शान्ति पद की प्राप्ति नहीं होती लोक रंजना की। वासना करके पढ़ सुन ज्ञान संवाद करना भगवद्भजन और साधनों का छोड़ देना विषय भोग निंदा व्यवहारादि कों में प्रवृत्त रहना और सद्गुरु की तलाश न करना अपने रोग और विकारों को न देखना औरों के दोष विकारों को देखना मूर्ख और मलीन संस्कारियों का काम है सो जन्मानुजन्म का दुःखदायी है ऊपर के मकान पर जो कोई बिना सीढ़ी कूद कर चढ़ेगा सो गिरेगा केवल मीठे मीठे कहने से मुंह मीठा नहीं होता है खाने से ही तृप्ति होती है भगवत् नाम स्मरण से यह बात समझी न जाई हरि गुरु की कृपा करके और निर्मलता संस्कार करके अपना किया भया पुरुषार्थ। सिद्ध होता है सो अलं बुद्धि श्रवणादि करके रह जाना अथवा भगवत् की कृपा पर रख और मनन निदध्यासनादिक साधन न करना राग द्वेष मय व्यवहारादिक में रहना हानि का कारण है किसलिये कि शुद्ध अद्वय सच्चिदानन्दात्मा और व्यवहार संसार में अत्यन्त प्रति कूलता और विरोध है जब तक साधन चतुष्टय

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

साधे नहीं तबतक निर्विकल्पता प्राप्त नहीं होती इस-
लिये जबतांई निर्विकल्पता न होय यत्न करना
चाहिये गुरु वेद वाक्यानुसार साधन अवस्था में रह-
कर अपने हृदय रूपी पात्र को साफ़ करता रहै विष-
य रस में अथवा मोह आलस करके अथवा तिति-
क्षा को दुःख रूप जान के रह जाना धाम पद से रह-
जाना है जैसे रास्ते चलनेवाले थक करके सो रहै हैं
और रास्ते चलने का दुःख सह न सके हैं तो क्योंकर
मंज़िल पै पहुंचेंगे प्रथम श्रद्धा और विश्वास बढ़ा-
ने में और मोह विषय के घटाने में पक्का होकर सत्सं-
ग और विचार करना चाहिये जिससे तीव्र वैराग्य
उत्पन्न होय अध्यात्म विद्या की उत्पत्ति और स्थिति
होय॥ छन्द॥ हे शुद्ध तत्त्व जगद्गुरू करुणा नि-
धान कृपा करो। अन्तस मलिनता मन्दता त्रय
ताप दोष ममता हरो॥ हरि गुरू से ऐसा आराधन
करै मुख्य लक्षण शिष्य अधिकारी का तो प्रथम
एक यही जानना चाहिये कि जिस को विषय भोगों
से चित्त में ग्लानि हो और संसार से उपरामता हो
जन्म मरण जरादिक रोगों को दुःख दायी जान कर
अन्तःकरण के रोगों के मिटावने में यत्न प्रपन्न
होय नित्य सुख मोक्ष की इच्छा का दृढ़ हो ऐसा

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जो होगा तो उस को नित्यानित्य वस्तु विवेकादिक चारों साधन सहज में ही प्राप्त हो जावेंगे और सत्संग और मनन निदध्यासनभी उस से बनेंगे और सद्गुरु भी उसे मिल जावेंगे प्रथम भूमिका शुभ इच्छा है जिज्ञासा और शुभ श्रद्धा को बढ़ावना चाहिये हृदय अन्तःकरण में दृढता चाहिये जैसे मही सनी हुई होती है कि जिसका सब कुछ बन सक्ता है और विशेष करके संशय विपर्य्ययकुतर्क भी चित्त में न होय और वेद वाक्य और महात्माओं के वाक्यों में विश्वास हो और कार्य अकार्य्य का वर्त्ताव शास्त्रानुसार हो ऐसे शिष्य को चाहिये कि सात्व की श्रद्धा को दृढ करके सद्गुरु की शरण जाय यद्यपि आप वेद शास्त्र पढ़ा भी होय और बुद्धि भी तीक्ष्ण होय तदपि सद्गुरु की शरण होना उपदेश लेना अवश्य है वेद के अर्थ समुद्रवत हैं सद्गुरु ब्रह्म वेत्ता बादल रूप हैं समुद्र का जल खारी होने से सुख से ग्रहण नहीं होता है न प्यास जाती है जब बादल ग्रहण करके बरसते हैं तभी मिष्ठता संयुक्त होय सुख से ग्रहण किया जाता है और तृषा भी मिट जाती है गुरु के लक्षण पहिले लिखे गये हैं ऐसे गुरु के पास बास कर गुरु की सेवा करै और अपनी सेवा से प्रसन्न करै गुरु को ईश्वर से भी अधिक

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

माने उन के वाक्य में विश्वास कर उपदेश अनुसार
साधन करने में पुरुषार्थ करै सो ऐसे शिष्य अधिका-
री के प्रश्न और सद्गुरु के उपदेश रूपी उत्तर को जो महा-
त्माओं से सुनै सह युगलकिशोर शरण जिसको जगन-
किशोर भी कहते हैं राय हरिकिशोर का पुत्र चित्रगुप्तवं-
शी भटनागर कायस्थ सिकंदराबाद का बासी लिखता है
परमात्मा अनुग्रह करि पूरण सफल करै॥ शिष्य प्रश्न
हे भगवन जो आपने कहा कि मनुष्य देह में ही मोह नि-
द्रा से जागने का साधन बन सक्ता है सो मैं पूछूं हूं कि
मोह रूपी निद्रा क्या है और उस से जागना और भवसा-
गर से पार होना और सुख के किनारे पर पहुंचना क्या
है और उसके साधन क्या क्या हैं मैं कौन हूं देह हूं या
जीव हूं और जीवात्मा और परमात्मा का क्या स्वरूप है
माया और ईश्वर का क्या स्वरूप है॥ आचार्य सद्गुरु
सातों प्रश्न का उत्तर समझाते हैं॥ हे शिष्य सा-
वधान होकर सुनु एक आत्मा चेतन्य परिपूर्ण जिसको पर-
मेश्वर कहते हैं अचिंत्य शक्तिवाला है एक ईक्षण श-
क्ति एक से बहुत हो जाने की भी उसकी शक्ति है उसी
इच्छा का नाम माया है उस के दो अंग हैं ज्ञान शक्ति
करके विद्या अपोषण शक्ति करके अविद्या अविद्या के
अर्थ पहिले कहि आये हैं उसी को अज्ञान अन्यथाभान

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भूल भ्रान्ति भी कहते हैं तिस अविद्या से भया अहंकार अहंकार से भया मोह ता करके अपने निज स्वरूप का ज्ञान तो भूल गया देह और घट पट आदि संसारी व्यवहार का ज्ञान हो गया यही मोह रूपी निद्रा है जो सुख दुख क्रिया जगत् की भान होती है यही इस निद्रा के स्वप्न हैं जिसमें ये प्राणी जन्मानुजन्म से सोया भया जन्म मरण आदिक दुख भोग रहा है इस निद्रा का नाश होना और ज्ञान रूपी जाग्रत में स्थित होना अर्थात् अपने आत्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप अकर्त्ता अभोक्ता नित्य निर्विकार निश्चय कर उसी में अपनी वृत्तियों का प्रवाह करना यही मोह रूपी निद्रा से जागना है और यह जगत् एक समुद्र जन्म मरण जरा रोग चिन्ता आदिक जल करके भरा हुवा है इस समुद्र का किनारा सच्चिदानन्द घन शांत सुख स्वरूप परमात्मा है उसी की कल्पना का फैलाव यह संसार सागर है ईश्वर आराधन और श्रवणादिक साधन और वैराग्य और विचार इस समुद्र की नौका हैं सद्गुरु ब्रह्म वेत्ता मल्लाह हैं जिस को इस संसार सागर से पार होने की इच्छा हो वो इन नौकों पर चढ़कर सद्गुरु की कृपा से सुख के किनारे पर पहुंच सक्ता है अपने आत्मा का ज्ञान यही सुख का किनारा है और जो

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तैं ने साधनों के वास्ते पूंछा है सो साधन वेद ने वर्णन किये हैं परन्तु उसके अनुसार कुछ संक्षेप करके हम भी कहते हैं प्रथम तो इस मनुष्य तनु धारी को गुरु और वेद के वाक्य पर श्रद्धा और विश्वास चाहिये जिस जिस क्रिया का त्याग और जिस जिस कर्म का ग्रहण महात्मा गुरु वेद कहते हैं उस का वर्ताव करना चाहिये निषेध और अशुभ कर्म चोरी हिंसा निंदा झूंठ बोलना पर स्त्री गमन आदिक की ओर मन और तनु को जाने न दे इस विचार से कि शास्त्र सत्य है थोड़े संवाद के वास्ते जन्मानुजन्म अधम गति का दुःख भोगना पड़ेगा विचार अभ्यास और वैराग्य से अपने मन को वश में करना चाहिये और वेद विहित वर्णाश्रम धर्म और नित्य नैमित्त शुभ कर्म श्रद्धा विधि पूर्वक बिना फल की चाह के पुरुषार्थ करता रहै सकाम कर्म जो शास्त्र में कहे हैं इन में लोभ न करना चाहिये क्योंकि ये बंधन के हेतु हैं और निष्काम कर्म अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा मोक्ष का हेतु है शास्त्र ने मूर्खों की रुचि बढ़ाने के वास्ते स्वर्गादिक के फल दिखाये हैं ताकारण उस अल्प सुख की ओर मन को नहीं लुभाना। तीसरे सदैव अपने अन्तःकरण के खोटों पर दृष्टि रखना दुर्वासना को हटा वतारहे मन इन्द्रियों का निरोध

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

करता रहै पूर्व्व और वर्त्तमान जन्म में जो पाप कर्म ब-
न गये हैं उन का प्रायश्चित्त करै अदृष्ट अशुभ कर्म
का मुख्य प्रायश्चित्त भगवद्भजन और गंगा स्नान
है जिस करके अनेक जन्मों के पाप कर्म नाश को
प्राप्त होते हैं नित्य कर्म ये हैं कि पिछले पहर से रात्रि
को जागना यथा शक्ति नाम सध्या न स्मरण गुरु दे-
व और उपासक देव का करना फिर शौच से निवृत्त हो-
करके प्रातःकाल की संध्या उपासना तांत्रोक्त और
वेदोक्त करके गायत्री का जाप करना मध्याह्नकाल में
मध्याह्न संध्या कर पंच ग्रासी बलि वैश्वदेव अतिथि भाग
करके भोजन करना फिर सायं काल को सायं काल
की संध्या उपासना करना और जो नियम जप पाठ आदि-
क का हो सो करना नैमित्त कर्म पितृ श्राद्ध तीर्थ पर्व ग्र-
हण समय जप होम ब्रह्म भोजनादिक यथा शक्ति
भगवत् जन्म दिवस के उपवास अष्टमी एकादशी आ-
दिक के व्रत इन नित्य नैमित्तिक कर्म करने से नित्य के
पाप दूर होते हैं न करने से पाप बढ़ते हैं चौथे दैवी सं-
पत्ति और आसुरी जो श्री कृष्ण चन्द्र महाराज ने
१६ सोलहवें अध्याय गीता जी में अर्जुन प्रति उपदेश कि-
या है आसुरी का त्याग दैवी का ग्रहण करता जाय कु-
छ संक्षेप करके यहां भी लिखा जाता है त्याग के योग

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ये हैं काम १ क्रोध २ लोभ ३ मोह ४ निंदा ५ हिंसा ६ ईर्षा ७ मत्सरता ८ चोरी ९ परस्त्रीगमन १० झूठबोलना ११ दंभ १२ गर्व १३ पाखण्ड १४ वैरभाव १५ ग्रहण के योग ये हैं दया १ शील २ संतोष ३ ब्रह्मचर्य्य ४ आर्जवता ५ क्षमा ६ सत्य बोलना ७ सत्य व्यवहार करना ८ मन इन्द्रियादिक को वश में रखना ९ गुरु साधुओं की सेवा १० औरों को मान देना ११ आप अमान रहना १२ सत्संग और शुभ वासना रखना १३ परमेश्वर का नाम स्मरण करना १४ और बहिरंग अन्तरंग साधन पहिले भी हम कहि आये हैं जब ताईं निर्विकल्पता प्राप्त न होय शुभ कर्म और साधन करने में पुरुषार्थ करना चाहिये और इस काल में तप यज्ञादिक विशेष साधन जो न बन सकें तो परमेश्वर की सच्ची भक्ति और नाम स्मरण और सच्चा व्यवहार सुगम उपाय है जिस से अपना घर बना रहै और अन्तःकरण की शुद्धी होती जाय भक्ति के प्रताप करके सभे सिर बिना कठिनाई के ज्ञान की प्राप्ति होय परमानंद का भागी हो जायगा भक्ति के दो अंग हैं। अपरा और परा अपरा साधन रूपा है और परा फलरूपा है अपरा भक्ति के ९ अंग शास्त्र ने कहे हैं प्रथम संतों का संग सेवा १ दूसरे श्रवण भगवत् कथा का २

तीसरे गुरु सेवा है ३ चौथे कीर्त्तन गुणानुवाद महाराज के हैं ४ पाँचवें नाम का जपना और जप मूल मंत्र गायत्री का ५ छठें शील सन्तोष और शौच ६ सातवें अपने दोषों पर दृष्टि रखना पराये दोषों को न देखना ७ आठवें छल झूंठ न रखना सत्य बोलना सच्चा व्यवहार रखना ८ नवें सब में परमेश्वर का रूप देखना और परमेश्वर का ही भाव आसरा रख शरणागत भाव उपजाना सगुण ब्रह्म में स्वाभाविक प्रेम होना लक्षण परा भक्ति का है जो नवधा भक्ति के साधनों करके प्राप्त होता है इस अपरा भक्ति के साधनों करके अन्तःकरण का शुद्ध करना अवश्य है अशुभ बासना और मलीन वृत्तियों का मिटावना दोष दृष्टि और अन्तरके विचार से बनता है जैसे काम करके मलीन बासना पर स्त्री लंपट होने की वृत्ति जो चित्त में उपजे तो उस के दोषों का देखना और परिणाम को विचार कर मन को रोकना और ब्रह्मचर्य्य का अभ्यास करना चाहिये स्त्री पाप अग्नि की ज्वाला होती हैं मनुष्यों को घास की नाईं जला देती हैं वर्त्तमान काल में बल आरोग्यता तप तेज को हरती हैं और अनेक ताप और दुख रोगों को दिखावती हैं और परिणाम में सूखी लकड़ी की नाईं नरक की अग्नि को बढ़ावती हैं

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दूसरे जन्म में कूकर शूकर बनावती हैं ऊपर से चम-
डा ढका हुवा है भीतर मलमूत्र हाड़ मांस दुर्गंधता-
लिये हुये भरा हुवा है इस रीति के विवेक और वि-
चार से चित्त को स्त्रियों में से हटाय लेना॥ क्रोधरूपी
वृत्ति जो उपजै तौ क्षमा का अभ्यास करना और उस
के दोषों को ऐसा विचारे कि क्रोध अपराध करनेवाले
पर होता है तौ सब से बड़ा अपराधी इसक्रोधहीको सम-
भो क्योंकि धर्म अर्त्थ काम मोक्ष चारों पदार्थ का नाश क-
रने वाला और अपने शरीर का जलाने वाला है तौ उस
क्रोध अपराधीपर क्रोध करके चित्त अपने से बाहर नि-
काल देना दूसरे अपनी निंदा सुन कर भी अन्तःकरण
में क्रोध रूपी क्षोभ होता है वा समय उस बात को वि-
चारना चाहिये कि जो दूसरे का चित्त जो मेरी निंदा-
करके ही प्रसन्न होय तौ बिना यत्न और विना सेवा
और विना धन के उस के मन की प्रसन्नताई का फल
मिला तिस पर भी निंदा करने वाला बदला नहीं चा-
हता इस से उपरान्त निंदक का उपकार माता से भी-
विशेष है माता मल को हाथों से धोती है निंदा करने
वाला जिह्वा से धोता है पाप को हरता है और अपने
पुण्य को देता है निंदक की बराबर कोई हित हेतु नहीं है
इस विचार से क्रोध रूपी वृत्ति को हटावना चाहिये॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

धन के वास्ते जो लोभ रूपी वृत्ति चित्त में उपजै तो धन के दोषों पर दृष्टि करके सन्तोष का अभ्यास करना चाहिये क्योंकि धन बहुत दुःख और श्रम करके और अनर्थों का भार शिर पर रखने से मिलता है सोभी जो प्रारब्ध में होय तो मिलता है और शोचना चाहिये कि अपने उदर पूर्णा निमित्त केवल आध सेर आटा ही होता है स्त्री पुत्र भ्रातादिक कुल के वाले धाम ग्राम वनौकर चाकर हाथी घोड़े किये सब अन्तरीय ठग और नाशवान हैं खाय उड़ाय जाते हैं और एक विकार इस में यह भी है कि जितनी वृद्धिता धन की होय उतनी तृष्णा और विषयादिक की और मद अभिमान की वृद्धिता और रक्षा की चिंता अन्तःकरण में बढ़ती जाती है संचित का दुःख और श्रम और रक्षा का और खर्च का शोच चोरी होजाने को भय वर्त्तमान काल में और परिणाम में अनर्थों का फल भोगना है इस विचार से इस वृत्ति को चित्त से बाहर कर सन्तोष का अभ्यास बढ़ाता जाय॥ मोह की वृत्तियां जो अपने देह और देह के सम्बन्धियों के चित्त में उपजें तो परिणाम वियोगादिकों के दुःख दोषों को विचारना चाहिये क्योंकि काल रूपी व्याल सब के पीछे लगा हुआ है विशेष मोह पुत्र का होता है विवेक कर उसके दोषों को विचार कर वैराग्य का भ्यास

करना चाहिये दोष यह है जब तक पुत्र उत्पन्न नहीं होता है माता पिता को तृष्णा रूपी चिन्ता रहती है गर्भ रहा तब गर्भ के गिर जाने का शोच रहता है जब पुत्र का जन्म भया तब द्रव्य का खर्च और शीतला मशानादिक रोगों का उपाय करने में दुःख और श्रम उठाता है फिर पढ़ने लिखने व्यवहारादिक में मन्द हुवा और नालायक और मूर्ख हुवा तो उस का दुःख दारुण हृदय को जलाता रहै जो पुत्र अपने सामने मर गया तो प्राणों का हरने वाला भया आप उस के सामने मर गये तो उस के मोह में हानि बनी रही और वियोग का शोक सहना पड़ा यह पुत्र गर्भ में तो स्त्री को हरता है जन्म लेकर धन को हरता है मरता भया प्राणों को हरता है पुत्री भई तो जो हानि और शोच और खर्च ऊपर लिखे गये उस के सिवाय और यह होता है कि यह अपने घर में भी नहीं रहती सन्तान कुपात्र हुई तो अपने दुःख के सिवाय पित्रों का भी दुःख दायी हुवा इस विचार से मोह को दूर करना चाहिये अपनी देह के मोह में यह विचार चाहिये कि शरीर क्षण भंग है आगे को कुछ सहायता नहीं मिलेगी देह धारी के शिर पर पापों की गठरी रख आप नाश को प्राप्त हो जाता है इसलिये नित्य

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रति मृत्यु का सुमिरन रख मलीन वासनाओं से मन।
को हटावना अवश्य है और ऐसा नियम करना चा-
हिये कि जो श्वास निकलै बिना नाम के न निकलै
योग का वियोग जीवने का मरना अन्त है समय पाय।
कर ब्रह्मा वृन्दादिक का भी नाश हो जाता है यह जग-
त् भी उत्पत्ति और नाश होता रहता है रावण सरी-
खे राजा चक्रवर्त्ती धूलिकी नाईं काल की आँधी सें
उड़गये और मनुष्यों की क्या सामर्थ्य और क्या जीव-
ने की आशा है ताकारण विद्या और श्रेष्ठ कुल और
राज्य और धन पाय कर अभिमान नहीं करना और कि-
सी को न सतावना विद्या का फल ग़रीबी और नम्रता
है राज्यकाज धन का फल परोपकारता और दान और
नीति है मन को अपने वशमें कर दैवी संपत्ति के मार्ग पर
चलना चाहिये मन के आधीन आप न होना चाहिये।
हे शिष्य यही मन अपना बैरी है बन्धन के हेतु होनेसे
यही मन अपना मित्र है शुभ कर्म करने और प्रभु के
स्मरण करने से इसी मन का माना हुवा यह संसार है
बन्धमोक्ष सुख दुःख सब की जड़ यही मन है और ब-
ड़ा यह चंचल है इस पर सब काल दृष्टि रख सावधा-
न रहना चाहिये शुभकर्म और उपासना करते करते
जब शुद्ध और निरोध हो जाय तब सद्गुरु कृपा कर स्मरण-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

मात्र में आवरण दूर कर सके हैं सर्व दुःख अनर्थों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति मोक्ष पद यही है प्राणी को चाहिये कि सतोगुण को बढ़ावता जाय रजोगुण तमोगुण को जो बन्ध के हेतु हैं घटावता जाय सतोगुण की प्रबलता करके जब इसको ज्ञान द्वारा ब्रह्माकार वृत्ति हो जायगी तब सतोगुण भी जाता रहेगा सतोगुण के सेवन में दश प्रकार शास्त्र ने वर्णन किये हैं शास्त्र का श्रवण १ जिस में निवृत्ति वेदान्त आदिक सात्विक हैं राजस में प्रवृत्ति शास्त्र कर्म फल देश है तामस में पाखंड और विषय काम शास्त्रादिक दूसरा प्रकार देश का है व्यक्त देश अर्थात् एकान्त और प्रभु के धामादिक सात्त्विकी देश कहलाते हैं राजधानी राजस है ग्रामादिक तामस हैं तीसरा प्रकार जन है साधु सन्त जन निवृत्ति सात्त्विकी जन हैं व्यवहारी राज काज वाले राजसी जन हैं मूर्ख दुराचारी तामसी जन हैं चौथा प्रकार जल है गंगा आदिक तीर्थ जल सात्त्विकी है कूप जल और सुगन्धी जल राजसी है मधुरादिक जल तामसी है पांचवां प्रकार काल है ब्रह्म मुहूर्त पांच ५ घड़ी रात रहे से सूर्य्य के प्रकाश तक सात्त्विकी है और काल दिन का राजसी है रात्रि अर्द्ध रात्रि तक तामसी है छठां कर्म नित्य नैमित्त शुभ कर्म निष्काम सात्त्विकी है।

तप यज्ञादिक सकाम राजसी हैं अनुष्ठानादिक कर्म जो किसी के दुःख हेतु के हों तामसी हैं सातवां जन्म जो दीक्षा में दूसरा जन्म गिना जाता है विष्णु शिव शाक्ति दीक्षा सात्विकी है क्षुद्र देवता दीक्षा राजसी है भूत प्रेतादिक की दीक्षा तामसी है आठवां प्रकार ध्यान है सगुण ब्रह्म विष्णु शिव शक्ति राम कृष्ण अवतारादिक सात्विकी ध्यान है स्त्री पुत्रादिक राजसी है वैरी आदिक तामसी है नववां मंत्र है प्रणव और गायत्री आदिक सात्विकी मंत्र हैं अपर देवताओं के मंत्र जो सकाम हैं सो राजसी हैं भूतादिक मंत्र तामसी हैं दशवां संस्कार अपने अन्तःकरण का शोधन सात्विकी है अपनी देह का शोधन राजसी है गृहादिक का शोधन तामसी है इस रीति करके सतोगुणी पदार्थों का ग्रहण राजसी तामसी से त्याग होना चाहिये और विशेष रीति इन तीनों गुणों की अठारहवें अध्याय भगवद्गीता में लिखी हुई है हे शिष्य जो तैंने तीन प्रश्न मोह निद्रा से जागने और सुख के किनारे पर पहुंचने और साधनों के किये तिन का उत्तर हो चुका और जीवात्मा और परमात्मा और माया और ईश्वर और संसार के जो चार प्रश्न तुम्हारे हैं तिन का हम उत्तर कहते हैं यही अध्यात्मविद्या है जो शुद्ध अन्तःकरण में

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ठहर कर फलदायक होती है इस अन्तर की ही शु-
द्धि के हेतु धर्म और कर्म और साधन अधिकारी प्रति
अनेक प्रकार के गुरु वेद कहते आये हैं अन्तःकरण
शुद्धि हुये पीछे यत्न करने की कुछ ज़रूरत नहीं है
इस जीवात्मा का केवल एक धर्म ही सहायक और
साथी है और कोई नहीं है आत्मा अनात्मा में तम
प्रकाश की नाईं परस्पर विरोध है अनादिकाल से
जो वृत्तियों का प्रवाह अनात्मा की ओर चला आ-
ता है उसके हटावने के वास्ते साधन और विचार हैं
और अनात्मा की तरफ़ से प्रवाह को हटा के आत्मा
की तरफ़ लाना अवश्य है किस लिये जिस को पूर्व्व
की ओर जाना है तब पश्चिम की ओर चलने से पूर्व्व
नहीं मिलेगा अब अपने प्रश्नों का उत्तर सुनो कि
वास्तव में तो यह देह और यह संसार और यह माया
और ईश्वर और जीव कल्पना किया हुवा अपने अ-
द्वितीय आत्मा का है जैसे समुद्र और समुद्र की ल-
हर नाम रूप मिथ्या माना हुआ मन की भ्रांति करके
जेवरी सर्प की नाईं है देखो जेवरी में सर्प न पहले था
न अब है न होगा जब जेवरी का ज्ञान होता है इसी प्रका-
रा सर्प की भ्रांति दूर हो जाती है परन्तु तुम्हारे सम-
झाने के हेतु संसार और माया और जीव और ईश्वर

की उत्पत्ति कही जाती है कि जब अद्वय सच्चिदानन्द परमात्मा परिपूर्ण को एक से बहुत रूप होने की इच्छा भई वोही इच्छा त्रिगुणात्मक माया कहलाई जाती है सो वो अपोहन शक्ति उसी अद्वय ब्रह्म की है उस माया के दो २ अंग भये एक शुद्ध सत्वमय जिसको विद्या कहते हैं दूसरा अंग मलिन रजतम मिला हुवा जिसको अविद्या कहते हैं मानो उस इच्छा रूपी बीज से दो अंकुर की उत्पत्ति हुई विद्या अविद्या परा अपरा शुद्ध मलीन ईश्वर जीव ज्ञान अज्ञान शुभ अशुभ पाप पुण्य धर्म अधर्म गुण अवगुण स्वर्ग नर्क ऊर्द्ध अध बन्ध मोक्ष सुख दुःख तम प्रकाश सुर असुर जड़ चैतन्य आदिक दो २ भाग एक उत्तम दूसरा निकृष्ट होते गये माया उसी को कहा जाता है कि वास्तव में तो कुछ हो नहीं और प्रतीत हुये माया सत्य भी कही नहीं जाती है क्योंकि वास्तव में कुछ पदार्थ नहीं है सत्य का नाश नहीं होता इस का ज्ञान से नाश होता है और असत्य भी नहीं कही जाती कि प्रत्यक्ष प्रपंच रूप नाना भांति का भान होता है असत्य वस्तु भान नहीं होती और सत्य असत्य भी परस्पर विरोध होने से नहीं कह सकते हैं किन्तु अनिर्वचनीय शक्ति

उस ब्रह्म अद्वय तत्व की है सो शुद्ध सत्व मय माया में अद्वितीय परिपूर्ण चैतन्य का आभास ईश्वर कहलाया उसमे आकाश आकाश से वायु वायु से अग्नि अग्नि से जल जल से पृथ्वी ये पांच महा भूत उत्पन्न हुये जिससे पंची करण होकर पिंड और ब्रह्माण्ड रचे गये और मलीन अंश माया में जिस को अविद्या कहते हैं उसी अद्वितीय चैतन्य का आभास जीव भया वो विंब आप अद्वय तत्व परिपूर्ण अपने प्रति विंब से ईश्वर जीव को करता भया जैसे दो घट जल के भरे हुये हैं एक में शुद्ध निर्मल जल है एक में गंदला जल है दोनों में एक ही सूर्य्य का प्रति विंब है निर्मल जल में जल को दवाकर अच्छा प्रकाश करता है और गंदले में गंदला पन से दवा हुवा छोटासा मलीन दीखता है इसी तरह से ईश्वर की उपाधि शुद्ध माया है ईश्वर सर्वज्ञ शक्तिमान् शुद्ध तत्त्व समर्थ सर्व व्यापी सत्य संकल्प अपने निज स्वरूप और सवों के स्वरूप को जानता भया प्रकाश कर रहा है माया उसके वश में है वो माया के वश नहीं है आप अकर्त्ता अभोक्ता है जीवों के किये भये कर्मों का फल देने वाला है वोही विष्णु है वोही शिव वोही ब्रह्मा वोही पुरुष स्वरूप वोही शक्ति

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

स्वरूप है वोही ईश्वर भक्ति विवश धर्म हेतु अवतार धारण कर लीला करता है जैसे इस लोक में देहादिक का पालक और रक्षक और दण्ड का देने वाला राजा होता है पुरुषोत्तम शुद्ध निर्विकल्प चैतन्य निर्गुण निराकार साक्षी मात्र ईश्वर और जीव का है ईश्वर का स्वरूप तो वर्णन हुवा अब देह और देहधारी का स्वरूप सुनो जीव की उपाधि मलीन। अविद्या है जिसके वश होकर अपने स्वरूप को भी भूल गया है दूसरे को भी नहीं जानता कर्ता भोक्ता पापी पुण्यात्मा मानता हुआ जन्म मरण रूप संसारी हो रहा है सो जीव की कारणउपाधि अविद्या है सोई कारण शरीर कहलाती है अपने स्वरूपानन्द देखने वाले होने से आनन्दमय कोश कहलाता है अपना जीव सब प्राणी मात्र को अत्यन्त प्रिय है यही आनन्द कहलाता है और कारण के गुण कार्य्य में होते हैं सो ये पंच महा भूतभी सत रज तम त्रि-गुणमय हैं उनके न्यारे न्यारे सात्विक अंशते श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा घ्राण ज्ञान इन्द्रियां होती भई। और मन बुद्धि चित्त अहंकार इन सबों के मिले भये सात्विक अंश के भीतर के अन्तःकरण होते भये पांचो ज्ञान इन्द्री मिली भई बुद्धि विज्ञान मय कोश

कहे हैं और ज्ञान इन्द्री मिला भया मन मनो-
मय कोश कहिये है और दोनों के कर्ण होने से चि-
त्त का मन में और कर्त्ता होने से अहंकार का बुद्धि में
प्रवेश जानना इसलिये चित्त अहंकार के न्यारे को-
श नहीं हैं और पंच महा भूतों के न्यारे न्यारे रज अंश
से हाथ पाँव वाक्य उपस्थ गुदा ये पांच कर्म इन्द्री
होती भई और मिले भये रज अंश से प्राण होते भ-
ये सो प्राण अपान व्यान उदान समान क्रिया भेद
करके पांच नाम कहलाये सो प्राण कर्मेन्द्री करके
प्राणा मय कोश भया इस प्रकार विज्ञान मय मनो-
मय प्राण मय जीव के कार्य उपाधी हैं इसी से १७
सत्तरह तत्त्व का लिंग शरीर है उसी को सूक्ष्म और
पुरीयाष्टक और क्रत वाहक कहते हैं सो अपंचीकृत
है स्वरूप है सतो गुण ज्ञान शक्ति धारे हुये है जानने
के पदार्थ उस के अंश से हुये रजो गुण विक्षेप और
क्रिया शक्ति धारे हुये है क्रिया वाले पदार्थ उस के
अंश से हुये पांचों महाभूतों के तम अंश जो रहे तिन
के एक एक ही में दो दो भाग करके फिर आधे आधे
भाग में चार अंश करके अपने अपने बड़े भागों से औ-
र दूसरों के छोटे अंशों के मिलावने से पंचीकरण होते
भये पंचीकृत भूतों से स्थूल देह और ब्रह्माण्ड और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

एक एक ब्रह्माण्ड में चौदह चौदह लोक होते भये तिन में ७ सात लोक भूर्भुवः स्वः मह जन तप सत्य ऊपर के होते भये अतल सुतल वितल तलातल रसातल महातल पाताल ये सात लोक नीचे के होते भये उन लोकों में देवता मनुष्य राक्षस पशु पक्षी आदिक देहधारी बसते भये चार खानि करके सृष्टि की उत्पत्ति होती भई जो पृथ्वी को फोर कर वृक्षादिक निकलते हैं सो उद्भिज कहलाते हैं मच्छर खटमल जूं आदिक पसीने से पैदा होते हैं वे स्वेदज कहलाते हैं पक्षी सर्प मच्छी आदिक अंडज कहलाते हैं और मनुष्य पशु आदिक जरायुज कहलाते हैं पंची कृत महा भूत से जो भया स्थूल देह सो भोग का स्थान कहिये है माता पिता करके खाया भया अन्न उसके रस से वीर्य्य और रुधिर होता है तिस से यह देह बनती है और अन्न ही के रस करके बढ़ती है सो यह आत्मा का स्थूल शरीर अन्नमय कोश कहिये है मोह ममता का तंतु कर्तृत्त्व भोक्तृत्व समस्त प्राणी मात्र के अन्तर में फैला हुवा है इसी का नाम संसार है सो सत्य अधिष्ठान के विषय मिथ्या प्रपंच कार्य्य कल्पना रूप अध्यारोप है जैसे जेवरी में सर्प का आरोप होता है वोही अद्वितीय ब्रह्म नाना रूप भान होता है हे शिष्य जो तू

यह पूछता है मैं कौन हूं सो तू सूक्ष्म दृष्टि से अपने मन में विचार कर तू भी जाने है और सब जानते हैं और कहते हैं कि मेरी देह मेरे हाथ पांव मेरा मन मेरी बुद्धि मेरे प्राण यह कोई नहीं कहता है कि मैं देह और मैं बुद्धि आदिक हूं तो फिर तेरा स्वरूप इन देहादिक से तो न्यारा ठहरा और तू भी जाने है और भी सब जानते हैं कि पूर्व्व जन्म में जो हमने कर्म्म किया इस जन्म में तिस का यह फल भोगते हैं और अब जैसा करेंगे आगे भोगेंगे तो तीन जन्म का ज्ञाता तू आप इस देह से न्यारा ठहरा यह देह तो एक ही जन्म में नाश हो जाती है देह के साथ तेरा नाश नहीं होता और हो तो आगे संचित कर्म्म को कौन भोगे तीसरे जो देह का धर्म उत्पन्न होना नाश होना बढ़ना घटना सोवना जागना बाल तरुण वृद्ध होना है सो तुझ में नहीं तू सदा एकसा बना रहता इसलिये तेरा स्वरूप देह नहीं है और जीव का स्वरूप अज्ञान करके कल्पित है सो ऊपर हम कहि आये हैं इसलिये तेरा स्वरूप न देह है न जीव है न मन है न बुद्धि है न लिंग शरीर है तेरा निज स्वरूप चैतन्य सब का जानने वाला है सब को सत्ता और प्रकाश देने वाला है साक्षी सच्चिदानन्द ज्ञान स्वरूप अखण्ड

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अजर अमर नित्य निर्विकार है अपने स्वरूप को भू-
लकर देह मन बुद्धि आदिक के धर्म मिथ्या अपने
ऊपर आरोपित कर दुःख मान रक्खा है अब अद्वय
नित्य चैतन्य परिपूर्ण का आख्यान सुनो जो अद्व-
य ज्ञान है वेदान्ती उसी को ब्रह्म कहते हैं योगी प-
रमात्मा कहते हैं भक्त जन उपासक विष्णु शिव
शक्ति राम कृष्णादि कहते हैं तत्त्व के जानने हारे उसी
को तत्त्व कहते हैं सो वो एक ही है उसका स्वरूप यह
है कि असत् जड़ दुःख अनात्मा दृश्य परिच्छिन्न देहादि-
क प्रपंच तिस से उलटा सत् चित् आनन्द आत्मा द्रष्टा
साक्षी चैतन्य परिपूर्ण ज्ञान स्वरूप जाग्रत स्वप्न सुषु-
प्ति आदिक प्रपंच का प्रकाशने वाला जो मन इन्द्री
आदिक का विषय नहीं अद्वय चैतन्य नित्य अखण्ड है
सो अपना ही स्वरूप जानै उससे न्यारा तू नहीं है जन्म
मरण तुझ में नहीं हैं यह धर्म शरीर के हैं भ्रम से जो
भया अध्यासता करके बुद्धि देहादिक के धर्म अपने
में मानकर सुखी दुःखी हो रहा है पराये धर्मों का मिथ्या
अध्यास जो जन्मानुजन्म से चला आता है दृढ़ प्रयत्न
करके सद्गुरु और वेद वाक्य के विश्वास करके ति-
स को त्याग कर अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में निमग्न हो-
जा तेरा स्वरूप यही है अनादि काल की अविद्या करके

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जो तेरे में रागादिक विकार बढ रहे हैं उनका दूर करना मोह रूपी निद्रा से जागना और सुख के किनारे पर पहुंचना है ॥ प्रश्न दूसरा ॥ हे भगवन् आपने ज्ञान के साधनों में जो प्रथम शुद्ध हो जाना अन्तःकरण का वर्णन किया है सो मैं आप से पूछूं हूं कि शुद्ध अन्तःकरण वाले के क्या लक्षण हैं और उसको क्या कर्त्तव्य है और जिस का अन्तःकरण मलीन है उन के क्या लक्षण हैं और उनको क्या करना चाहिये उत्तर कहते हैं ॥ हे शिष्य तैंने अच्छा प्रश्न किया सुनु जिस्का अन्तःकरण पूर्व सुकृत साधन करके शुद्ध है उसके ये लक्षण हैं कि आदि से ही प्रवृत्ति मार्ग से हटकर निवृत्ति की ओर चलेगा और उसके चित्त में विषय भोग राग द्वेष संसारी व्यवहार से उपरामता और वैराग्य होगा और सत्य शास्त्र के श्रवण और सत्संग साधु सेवा आदिक में अनुराग होगा मोक्ष की इच्छा दृढ़ होगी काम्य और निषेध कर्मों से चित्त हटा हुआ होगा उसको सद्गुरु ब्रह्म वेत्ता से उपदेश लेना चाहिये बहिरंग साधनों की उस को ज़रूरत नहीं है परन्तु इस काल में विद्यावान् और चतुर ऐसे भी होते हैं कि वेदान्त का कथन करके अपने को बाहर से अच्छा दिखलाते हैं भीतर से कामादिक और मन इन्द्रियादिक के

वशीभूत है कर्म उपासना आलस्य करके छोड़ दे-
ते हैं सो ऐसे नर शुद्ध अन्तःकरण के लक्षणों में नहीं
समझना अंतर्मुख वृत्ति और निर्मलता बुद्धि और कर्म
धर्म शास्त्र अनुकूल और विषय और निंदा हिंसा से वैरा-
ग्य विचार और सन्तोष और तितिक्षा सहित हरि गुरु सा-
धु सेवा होय उसकी गिननी शुद्ध अन्तस वालों में है और
जिस ने इस जन्म में ही अन्तःकरण की शुद्धि के हेतु नि-
षेध और सकाम कर्म त्याग कर शुभ वासना संयुक्त सु-
कर्म वेदविहित भगवत् उपासना में चित्त लगाया है वो
भी अधिकारी ज्ञान का है थोड़े काल में ज्ञान की प्राप्ति
हो जायगी ऊर्ध्व गति के ३ तीन कारण हैं पूर्व जन्म के
संस्कार का उज्ज्वल होना १ वर्त्तमान काल का पुरुषा-
र्थ २ ईश्वर अनुग्रह ३ शुद्ध अन्तःकरण के लक्षण
तो ये कहे गये उस को श्रवण मनन निदध्यासन आ-
दिक अन्तरंग साधन कर्त्तव्य है और मलीन अन्तसवा-
ले के ये लक्षण हैं कि उसके चित्त में अशुभ वासना
की प्रबलता होगी मन को विश्राम न होगा विषय भो-
ग कामादिक के वशीभूत रहेगा यद्यपि गृहस्थ को छो-
ड़ बन में जा बैठेगा तदपि मलीन वासना उस को क-
ल्याण पद से हटाय संशय विपर्यय उपजाय विषयवा-
सना रजोगुणी व्यवहार में प्रवृत्त कर देगी और श्रवण

भी जो उस को बना तो मनन और निदध्यासन में वृत्ति
उस की नहीं जमैगी अन्तःकरण के दोष और मलीनता
शुद्ध सत्त्व पदार्थ को जमने न देंगे उस को यह करना
चाहिये कि पराये दोष न देखै शास्त्र के लिखे हुये
शुभ आचरणों से अपनी वृत्तियों के वर्त्ताव को मिला-
ता रहे और अपने मन के ऊपर दृष्टि रक्खे जो दोष
शास्त्र की रीति से अपने में पावे उस को प्रयत्न कर
दूर करता रहे वासना यद्यपि बन्धन के हेतु होती है
शुभ हो अथवा अशुभ परन्तु साधन अवस्था में शुभ
का ग्रहण अशुभ का त्याग कहा है जैसे सतो गुण
की सहायता से रजोगुण तमोगुण को घटाया जाता
है फिर सिद्ध अवस्था हुये पीछे शुभ वासना भी जाती
रहैगी कर्म रूपी बीज के दो अंकुर होते हैं १ वासना
रूपी २ दूसरा भोग रूपी संचित अशुभ कर्मों से अशुभ
वासना होती है शुभ कर्म से शुभ वासना होती है सो
ये वासना रूपी अंकुर वर्त्तमान शरीर में कर्म करने से
बढ़ता घटता है इसी वास्ते वेद और गुरु रचे गये हैं कि
गुरु और वेद के उपदेश से पाप कर्म करके उपजी जो
अशुभ वासना सो दूर हो जाती है परन्तु दूसरा अंकुर
भोग रूपी बिना भोगे नहीं मिटता तो कारण मलीन-
अन्तःकरण वालों को वेदविहित शुभ कर्म निष्काम

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

नित्य नैमित्तादिक बिना आलस्य के विधि सहित नित्य प्रति पुरुषार्थ करके करना चाहिये भगवत्नाम स्मरण और उपासना में तत्पर होय हरि गुरु साधु सेवी होना चाहिये जिस के करने से पुण्य का बल बढ़ कर पाप कर्म का बल घट जाय ऐसा करते करते किसी जन्म में ज्ञान द्वारा करके परम पद का भागी होजायगा ॥ प्रश्न तीसरा कहते हैं हे भगवन् यह कर्म क्या है और जबकि कर्म सदा बन्धन का हेतु हुवा तो फिर वेद ने किस निमित्त कर्म का प्रति पादन किया । और कर्म कौन करता है कौन भोगता है कौन फल देता है और आपने प्रथम ऐसा उपदेश किया है कि अद्वय सच्चिदानन्द एक आत्मा परिपूर्ण अक्रिया अभोक्ता है और सब मिथ्या है भ्रम करके जगत प्रतीत होता है फिर कर्तृत्व भोक्तृत्व किस को रहा जो दूसरे को है तो द्वैत सिद्ध होती है और उसी आत्मा को है तो अकर्त्ता अभोक्तापना कहां रहा इस संदेह को कृपा करके दूर कीजिये ॥ उत्तर इस का गुरु कहते हैं ॥

हे शिष्य कर्म के अर्थ करने के हैं और वृत्तियों का स्वभाव नदी के जल की नांई है कि नित्य चला ही करती हैं वेद ने निषेध कर्म से डरा कर और स्वर्गादिक का लालच दिखा कर सुकर्म की ओर वृत्तियों का प्रवाह

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कराया इसलिये कि सुकर्म के प्रवाह में मन बुद्धि निर्मल होकर अपने निज स्वरूप को जो भूल गया है पहिचाने और आत्मा में वृत्ति जा ठहरै जैसे अनेक नदियां चलती चलती समुद्र में जाकर लय होजाती हैं कर्म काराड का तात्पर्य यही है कि जो ऊर्मी चित्त के विषय उठती हैं उसकी विशेषता से उन्मत्तता होजाती है जैसे बालक को जो माता पिता उसका लिखना पढ़ना व्यवहारादिक न सिखलावें तो बालक पशु गति में रहे और इतना शोचना चाहिये कि जैसे बालक को प्रथम ओनामासी आदिक सिखलाई जाती हैं तो उसका तात्पर्य यही है कि अक्षर ज्ञान में सामर्थ्य करके विद्या में तत्पर हो ऐसा ही वेद में कर्मादिक के वास्ते कहा है जिस को करते करते विमलता मन बुद्धि की होय मोक्ष पद का अधिकारी हो जाय यह नहीं है कि जन्म भर वोही आदिकि कर्म किया करै जैसे आदि में इस देह धारी को संस्कार दीक्षा होकर उपासना सगुरा स्वरूप की और सकाम कर्म की रीचे कराई जाती है फिर करते करते जब इस को विचार हुवा और सब पदार्थों को अनित्य और आगमापायी समझा तो निष्कामता करके अन्तःकरण की शुद्धि की प्राप्ति हो जायगी और जिस करके ज्ञान ।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्राप्त होय सब कर्म आपही छूट जायेंगे गीता जी में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन प्रति बारम्बार कर्म उपासना का उपदेश कर ऐसा वर्णन किया है कि अनेक जन्मों के साधन करते करते सिद्धि प्राप्त होती है ॥ अनेक जन्म संसिद्धि स्ततो यांति परां गतिम॥ और यह कर्म ही देहादिक प्रपंच की उत्पत्ति का बीज है जब शुद्ध चैतन्य निर्विकार में ॥ एकोहं भविष्यासि ॥ करके इच्छा उत्पन्न भई तो वोही प्रथम बीज कर्म का भया जिससे सब प्रपंच नाना मूर्ति करके खड़ा हो गया और नानात्व करके इतना फैलाकि अपने निज स्वरूप को भूल गया फिर जिस जिस देहधारी के जैसे जैसे कर्म होते भये तैसे तैसे फल लगते गये सो जो भूल और भ्रांति आत्मा के स्वरूप में होती भई तिसके ही मिटाने के वास्ते वेद रचे गये और कर्म उपासना ज्ञान तीन सीढ़ी रक्खी गई निषेध और सकाम कर्म तो बन्धन केही हेतु हैं जिस के करने से वेद ने त्याग लिखा है परन्तु निष्काम कर्म अन्तःकरण शुद्धि द्वारा मोक्ष का अधिकारी बनाता है और यह जो तुम ने पूंछा कि कर्म कौन करता है कौन भोगता है कौन फल देता है सो सुनो यह जीव जो चैतन्य कूटस्थ का आभास बुद्धि में अविद्या सहित

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

है सोई कर्म करने वाला और कर्मों का फल भोग-
ने वाला सूक्ष्म शरीर सहित है और शुद्ध सत्वमय
विद्या में जो चैतन्य का आभास जिसको ईश्वर सर्व-
ज्ञ सर्व शक्तिमान कहते हैं सो कर्मों का फल देने वा-
ला है परमात्मा शुद्ध निर्विकार अद्वितीयचैतन्य परि-
पूर्ण इन दोनों ईश्वर और जीव का साक्षी अकर्त्ता
अभोक्ता एक ही है उस में द्वैत का विकार नहीं आस-
क्त है क्योंकि उसी की इच्छा करके ये दोनों कल्पित
भये हैं यद्यपि इन दोनों में और सब जगत और जग-
त के पदार्थों में सत्ता उसी चैतन्य की है तदपि स-
ब से परे और सब से न्यारा अकर्त्ता अभोक्ता वोही ए-
क चैतन्य है और गीता जी में इस कर्म के पांच कार-
ण वर्णन हुये हैं ॥ अहंवृत्ति १ कर्मेन्द्री सहित यह
स्थूल देह २ मन बुद्धि ज्ञानेन्द्री सहित ३ प्राणवा-
यु की चेष्टा ४ चैतन्य साक्षी रूप की सत्ता ५ सु-
खाकार दुःखाकार वृत्ति होने से बुद्धि में जो आभा-
सित चैतन्य है कर्तृत्वभोक्तृत्व उसी को है यद्यपि स-
त्ता और अधिष्ठानता परमात्मा की है तदपि चैत-
न्य दीपक की नाईं केवल सत्ता और प्रकाश देने वा-
ला जानो साधक बाधक किसी का नहीं दीपक के
प्रकाश में कोई शुभ कर्म करो अथवा अशुभ कर्म

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

करो चाहो कुछ मत करो वो साधक बाधक नहीं है न दीपक को कुछ कर्म लगे ऐसे ही कृतत्व भोक्तृत्व चैतन्याभास को है शुद्ध चैतन्य अद्वितीयमें द्वैत का विकार नहीं आसक्ता है और यह कृतत्व भोक्तृत्व स्वप्न की समान है देखो कोई सामग्री स्वप्न में नहीं होती है केवल चैतन्य की सत्ता करके यह सब प्रपंच रच लेता है और सब रूप आप ही हो जाता है आप ही करता है आप ही भोगता है आप ही देखता है और जब तक जाग्रत नहीं होती उसको सत्यभी मानता है जाग्रत समय सारा प्रपंच स्वप्न का असत् और नाशवान् हो जाता है तैसे ही जब तक अविद्या करके मोह निद्रा में है कृतत्व भोक्तृत्व को सत्य मान रक्खा है ज्ञान अवस्था में सब का नाश है केवल आप ही आप रह जाता है यद्यपि कर्म साक्षात् मोक्ष का हेतु तो नहीं है अहंभाव करके और फल की इच्छा करके जन्म मरण का ही हेतु है और अध्यात्म विद्या और कर्म में परस्पर विरोध भी है परन्तु मल विक्षेपादिक रोग बिना कर्म निष्काम और विचार के दूर नहीं हो सके जब तक पात्र शुद्ध और जगत के पदार्थों से खाली नहीं होता तो उत्तम पदार्थ अध्यात्म विद्या का उस पात्र में क्यों कर आवे और क्यों कर ठहरे तिस

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कारण यह कर्म ज्ञान के अधिकार का सहायक है इसलिये इसका करना अवश्य है जब तक त्रिकुटी ज्ञान और देह का अध्यास बना हुआ है तब तक वेद अनुसार साधनों में पुरुषार्थ करता रहै देखो श्री कृष्ण महाराज का उपदेश अर्जुन प्रति जो नर अवतार थे कर्मों के वास्ते बारम्बार हुवा है कर्म उपासना के लिये न करने कर्म को नहीं कहा है फल की इच्छा के त्याग में कहा है ॥ प्रश्न है ॥ हे स्वामी कर्म का तात्पर्य्य तो मैं ने जाना उपासना ज्ञान और भक्ति का और निरूपण करिये ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य उपासना और भक्ति पर्याय शब्द हैं इन दोनों के अर्थ एक ही हैं अत्यन्त भक्ति का होना प्रेम है सगुण स्वरूप ईश्वर में जिस रूप का गुरू ने उपदेश किया है प्रीति से भजन पूजन अर्चन सेवा ध्यान राजसी मानसी करना और सब ओर से मन को खैंच कर उपासना देव में सदैव मन लगाये रहना यही उपासना है यही भक्ति है प्रथम नवधा भक्ति साधनी चाहिये जिस को हम पहिले कहि आये हैं उसके करते करते परा भक्ति और प्रेम उत्पन्न होता है सो परम पद पर पहुंचा देता है बिना उपासना के मन की एकाग्रता और बुद्धि का शुद्ध होना नहीं बनता क्योंकि प्रपंच के कार्य्यों में जो मन सो जगह बंट रहा है

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उपासना करने से सिमट कर एक जगह लग जायगा जिससे विक्षेपता दूर हो जायगी दूसरे ईश्वर उपास्यदेव शुद्ध तत्त्व सर्वज्ञ है उस का चिंतवन नित्य प्रति अन्तःकरण को शुद्ध करता चला जायगा श्रद्धा और प्रीति से विधि सहित उपासना को बढ़ावै और मन इन्द्रियादिक का निरोध करता रहै और शुभ कर्म निष्काम दृढ़ नेम से करता रहै और अपने उपास्यदेव में सब काल में मन की लगावट को बढ़ावता रहै जिससे तदाकार वृत्ति हो जाय जैसे उस ग्वालिये की वृत्ति भैंस में जमी ॥ दृष्टान्त ॥ एक ग्वालिया वन में भैंस वाला किसी महात्मा के पास आ निकला और महात्मा से प्रार्थना करता भया कि हे महाराज मुझ को भी कोई मंत्र साधन ऐसा बतलाइये जिस करके मेरा उद्धार होय महात्मा ने किसी देवता का मंत्र बतला दिया कि इस मंत्र को जपा करो दो तीन रोज़ पीछे महात्मा ने उससे पूछा कि तुम उस मंत्र को चित्त लगा कर जपते हो या नहीं। उसने कहा कि जप तो करता हूं परन्तु मन मेरा भैंस में जो मेरे घर है रहता है जप में मन नहीं लगता जब महात्मा ने उस की वृत्ति के अनुसार भैंस का ही ध्यान उसको बतलाया कि ईश्वर उपास्यदेव तुम्हारा भैंस के ही रूप में है उसी के रूप में ध्यान और मन लगावो।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उसने जङ्गल में एक मठ में बैठ कर खूब ध्यान लगा-
कर जप किया यहां तक कि अन्न और जल को भी भूल
गया महात्मा ने एक दिन जाकर वहां देखा और उस का
नाम लेकर पुकारा उसने जवाब दिया कि द्वार खिड़की
का छोटा है मेरे सींग इस में नहीं निकलैंगे जब गुरू ने
जाना कि वृत्ति इस की तदाकार उपास्यदेव के होगई त-
ब भीतर जाकर चैतन्य परिपूर्ण के ध्यान पर उस की वृ-
त्ति को जमा दिया हे शिष्य मन बुद्धि का जमाव उपास्यदे-
व में ऐसा ही होना चाहिये जब फल दायक होती है
इसी का नाम भक्ति है इसी का परिणाम परा और प्रेम फ-
ल रूपा है जिस के विषय परमेश्वर हैं और ज्ञान अर्थ
जानने के हैं जो अपने स्वरूप को अज्ञान करके भूल ग-
या है और मन बुद्धि देहादिक को अपना स्वरूप समझ
रक्खा है तिस से न्यारा होकर अपने स्वरूप को मनन ।
निदध्यासन करके यथार्थ जान लेना यही ज्ञान है औ-
र उस में प्रवृत्तियों का प्रवाह रख तदाकार हो जाना वि-
ज्ञान है ज्ञान के दो अंग हैं एक घट पटादिक का ज्ञा-
न मिथ्या और कल्पित बंधन का हेतु है दूसरा अपने
निजस्वरूप का ज्ञान सो सत्य है और मोक्ष का हेतु है
यद्यपि अपने आत्मा ही करके जो ज्ञान स्वरूप है उस से सब प-
दार्थ जाने जाते हैं परन्तु भ्रम करके देहधारी को घट पटादिक के

ज्ञान में अन्यथा भान है अर्थात् रस्सी को सांप जानना इसी को अज्ञान कहते हैं और जब रस्सी को रस्सी जाना और सांप का भ्रम दूर भया सो अद्वैत आत्मा का ज्ञान कहलाता है फिर उसके दो अंग हैं परोक्ष अपरोक्ष ब्रह्म है यह परोक्ष है ब्रह्म मैं हूं यह अपरोक्ष है ॥ प्रश्न है ॥ हे स्वामी आपने पहले ऐसा वर्णन किया है कि अद्वैत ज्ञान शुद्ध चैतन्य परिपूर्ण एक है जिस की बुद्धि में आभास होने से जीव संज्ञा हुई सो यह बात मेरी समझ में नहीं आई मुझ को तो जीव परिच्छिन्न और नाना शरीर प्रति अनेक प्रतीत होते हैं किसलिये जो एक जीव होय तो एक जीव का सुख दुःख ज्ञान अज्ञान सब को एक काल में एकसा होना चाहिये सो ऐसा नहीं है कोई सुखी है कोई दुखी है कोई ज्ञानी है कोई अज्ञानी है और जब कि जीव जो चैतन्य सहित आभास बुद्धि में आपने स्वरूप जीव का वर्णन किया है सब शरीरों में नाना और परिच्छिन्न ठहरे तो चैतन्य साक्षी भी न्यारे न्यारे बहुत मानने होंगे और ईश्वर भी नाना मानने पड़ेंगे एक अद्वैत चैतन्य नहीं बनता और सद्गुरु के लक्षणों में आप ने पहले ऐसा कहा है कि जीव ब्रह्म की एकत्वता निश्चय करके जाने और बिना अभेदता जीव ब्रह्म के मोक्ष पद की प्राप्ति नहीं ब्रह्म को आप एक सच्चिदानन्द रूप अक्रिय

का हूते हो जब कि जीव नाना परिछिन्न क्लेश सहित कर्त्ता भोक्ता ठहरे तिस की ब्रह्म से एकत्वता क्योंकर होगी कृपा करके इस संदेह को दूर कीजिये॥ उत्तर॥ हे शिष्य चैतन्य अद्वय ज्ञान स्वरूप परिपूर्ण एक ही है परिछिन्न और नाना नहीं है परन्तु अन्तःकरण नाना शरीर प्रति हैं ता करके सुख दुःख ज्ञान अज्ञान शरीर प्रति न्यारा न्यारा है और उन अनेक अन्तःकरणों में आभासरूपी एक चैतन्य का है विशेष भाग चैतन्य जो अन्तःकरण की वृत्तियों को प्रकाशे है साक्षी कहिये है ता विशेष भाग चैतन्य साक्षी की एकत्वता ब्रह्म अद्वय ज्ञान स्वरूप से बनती है और सामान्य भाग चैतन्य अन्तःकरण विशिष्ट बुद्धि आभासित और बुद्धि आभास सहित संसारी जीव कहिये सो चैतन्य मात्र तो एक ही है नाना नहीं परन्तु उपाधि भेद करके नानापन प्रतीत होता है सो उपाधि अन्तःकरण की है स्थूल शरीर प्रति सूक्ष्म शरीर भी नाना और परिछिन्न है श्री कृष्ण भगवान्ने गीता जी के दूसरे अध्याय के २३ और २४ श्लोक में अर्जुन के प्रश्न पर उपदेश किया है जो एक वस्तु समस्त जगह व्यापक है वो उपाधि भेद करके नाना नहीं होसक्ती जैसे घटाकाश और मठाकाश घट मठ की उपाधि से आकाश न्यारे न्यारे दीखते भी हैं परन्तु दोनों में महा-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

आकाश एक ही है उपाधि के नाश होने से मह्म आकाश से न्यारा घटाकाश मठाकाश कभी प्रतीत न होगा जैसे एक चन्द्रमा अनेक जल के पात्रो में नाना भांति दीखता है प्रतिविंव करके वास्तव में चन्द्रमा एक ही है और जो प्रतिविंव को ही नाना समझ कर जीवात्मा भी नाना माने जावैं तो भी नहीं बन सकता क्योंकि जीव का स्वरूप चैतन्य कूटस्थ और उसका आभास बुद्धि में अविद्या सहित जो है सो उस में चैतन्य कूटस्थ तो सबमें एक ही है मन बुद्धि आदिक जड़ रूप नाना और परिछिन्न है जैसे सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् का प्रकाशक है जहां उपाधि मकान और वृक्षादिक की है सो नाना वृक्ष और मकान होने से प्रतिविंव और प्रकाश नाना भांति होने लगते हैं ऐसे ही नानात्व अन्तःकरण की ही बनती है और सुख दुःख ज्ञान अज्ञान राग द्वेषादिक जो धर्म बुद्धि के हैं सो शरीर प्रति न्यारे न्यारे हैं अपना स्वरूप चैतन्य अकर्ता अभोक्ता क्लेश रहित साक्षी रूप प्रकाशक मन बुद्धि आदिक का एक ही है सो नाना रूप होकर भान होता है जैसे सुवर्ण के गहने और सुवर्ण गहने यद्यपि न्यारे न्यारे दीखते हैं नाम रूप करके सो कल्पित है सुवर्ण केवल सब में एक ही है ऐसे ही मृत्तिका के पात्रों को समझ लेना चाहिये ऐसे ही चैतन्य और प्रपंच को समझो

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रश्न ॥ हे महाराज जो मृत्तिका और सुवर्ण के दृष्टा-
न्त जो आप ने वर्णन किये हैं सो मृत्तिका सब पात्रों
में एक ही भांति दीखती है तैसे ही सुवर्ण सब गहनों
में एकसा ही दीखता है और प्रपंच के पदार्थ घट पटा-
दिक न्यारे न्यारे दीखते हैं ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य अ-
ज्ञान करके पदार्थों मे भेद भान हो रहा है वास्तव में
घट पट दोनों कार्य्य पृथ्वी के हैं उसी मृत्तिका में से जि-
ससे घट बनता है बन का वृक्ष उत्पन्न होता है वृक्ष
से कपास होती है तिस से सूत बनता है सूत से पट
बुना जाता है फिर पट के काई भेद होते हैं गजी गाढ़ा
मल मल्ल छींट आदिक और उस में जो देह के वस्त्र बना-
ये जाते हैं उन के भी नाना प्रकार के नाम होते हैं जैसे
एक तंतु सूत से नाम और रूप का इतना फैलाव भ-
या ऐसे ही सब पदार्थ संसार के पंच महा भूत के ही का-
र्य्य हैं और पंच भूत माया के कार्य्य हैं माया इच्छा श-
क्ति उसी अद्वय ब्रह्म की है ये सब प्रपंच नाना भांति
दीखता हुवा उसी एक चैतन्य ब्रह्म के तंतु के ताने
बाने में बुना हुवा है वास्तव में एक ही चैतन्य परिपू-
र्ण है जो अपनी अचिंत शक्ति करके नाना रूप भान
हो रहा है देखो बीज का क्या रूप होता है और ज-
ब पृथ्वी में बोया जाता है वोही बीज अंकुर रूप

होजाता है फिर उसी में गुद्दे डाली पत्ते फूल फल ना-
ना भांति के दीखते हैं और वोही बीज फल में ज्यों का
त्यों रहता है बीज में वृक्ष वृक्ष में बीज प्रत्यक्ष है ऐसे ही
आदि अन्त में जब एक रूप ही आत्मा ठहरा तो मध्य
में भी वोही है दूसरा नहीं समुद्र में अनेक तरंगें न्यारी
न्यारी दीखती हैं वास्तव में वोही एक जल है दूसरा
पदार्थ नहीं ऐसे ही परमात्मा सच्चिदानन्द परिपूर्ण
एक ही है नाम रूप करके नाना रूप भास रहा है अ-
स्ति भाति प्रिय नाम और रूप सब पदार्थों में हैं सो अ-
स्ति भाति प्रिय तीन गुण जो आत्मा के हैं सदा बने
रहते हैं नाम और रूप ये दो गुण माया के मिथ्या
और कल्पित नाशवान् हैं जैसे काठ का खिलौना
हाथी है उस को जब तोड़ा लकरी रह जाती है नाम
रूप हाथी का जाता रहता है इसी नाम रूप को जग-
त् जानो जैसे जेवरी सत्त है सर्प जो भ्रम करके भान
होता है असत् है सर्प दूसरा वस्तु नहीं है अँधेरे के
विकार से है अंधेरे के विकार से वोही जेवरी भुजंग
दीखती है किसी के बतलाने अथवा दीपक के प्रका-
श से जब जेवरी का ज्ञान हुवा उसी क्षण सर्प का
नाश हो गया तैसे ही स गुरु के उपदेश और शुद्ध
वृत्ति अपनी करके जिस काल ज्ञान का प्रकाश होता

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

है उसी द्वारा तिमिर अज्ञान का दूर होकर आत्मा चिदानन्द घन एक भासता है जगत् का नाश हो जाता है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् जो आपने वर्णन किया सो सत्य है परन्तु एक संशय यह दूर कीजिये कि जो आप एक ही आत्मा परिपूर्ण को वर्णन करते हो और जगत् को असत् कहते हो तो ब्रह्म अद्वय निराकार निरावयव है और यह जगत् सब को प्रत्यक्ष साकार और सावयव प्रतीत हो रहा है असत् वस्तु प्रतीत नहीं होती तो जगत् को क्योंकर असत समझा जाय और ब्रह्म निराकार निरावयव जगत् रूप क्योंकर हो सक्ता है क्योंकर जगत् साकार और सावयव है उत्तर ॥ हे शिष्य अज्ञान दिशा में आकार और अवयव भ्रांति करके प्रतीत होता है वास्तव में आकार और अवयव कुछ नहीं है अभी हम ने तुमसे दृष्टान्त रज्जु और सर्प का कहा है रज्जु में आकार और अवयव सर्प का कुछ नहीं है और तीनों काल में सर्प का अभाव है परन्तु बिना प्रकाश के समय सर्प प्रतीत साकार होता है तैसे ही प्रतीति भ्रांति करके जगत् की है अधिष्ठान ब्रह्म के ज्ञान करके जगत् की भ्रांति मिट जाती है जब कि आदि में और अन्त में अदृष्ट और निराकार है तिस ही को मध्य में जानो

अनात्मदृष्टि वालों को जिन को अधिष्ठान का ज्ञान नहीं है तिन की दृष्टि में दृश्य वर्ग सत्य है जिन की दृष्टि अधिष्ठान पर है उन के आगे सब असत्य है जिन की आँखों में विकार नहीं है और प्रकाश काल है उन को सर्प प्रतीत न होगा और देह भवनादिकों को जो आकार जगत् का देखते हैं सो पंच महाभूत के कार्य्य हैं सो पांचो महाभूत भी आकार और अवयव नहीं रखते आकाश शब्द मात्र है वायु स्पंद मात्र है जल द्रवता-मात्र है अग्नि दाहकता मात्र है पृथ्वी गन्ध मात्र है जब कि कारण के ही आकार और अवयव नहीं हैं तो कार्य्य के भी आकार और अवयव असत्य हैं पृथ्वी में जल के संयोग करके उद्भवता रूप वोही चैतन्य है जिस का नाम अन्न भया ताके रस से वीर्य्य रुधिर होय । स्थूल देह बना है जिस के अवयव हाथ पांव मुख आदिक न्यारे कल्पित भये इन अवयवों को न्यारा करो तो देह नहीं रहता है फिर उन अवयवों को विचारो तो अस्थि रुधिर मात्र है अस्थि रुधिर को न्यारा करो तो अवयव नहीं रहता और वास्तव में अस्थि रुधिर भी नहीं अन्न का रस वीर्य्य रूप आप ही आत्मा है जाग्रत में तो तुम को यह पंच महाभूत का कार्य्य दृश्य-वर्ग सावयव भान होता है परन्तु निद्रा समय जाग्रत

का प्रपंच भान नहीं होता दूसरी भांति का प्रपंच नाना भांति करके स्वप्न अवस्था में दीखता है वहां सामग्री पंच महाभूत और पंचीकरण कुछ भी नहीं है सूत की नाईं जो नाड़ी गल्ले में है उसी में नदी पर्वतादिक भान होते हैं और स्वप्न देखने वाला स्वप्न के प्रपंच को सत्य मानकर व्यवहार करता है क्योंकर स्वप्न स्त्री संगति से पुरुषों का वीर्य्य अस्खलित हो जाता है जाग्रत होते ही प्रपंच नाश होने से स्वप्न के प्रपंच को असत्य जानता है इसलिये विचार करना चाहिये कि वोही चैतन्य निरावयव अपनी कल्पना करके नाना रूप हो कर सावयव प्रपंच रच लेता है फिर आप ही उस का द्रष्टा होता है इसी भांति जाग्रत में भी जब नाईं और अज्ञान की निद्रा है वोही चैतन्य निराकार निरावयव नाना रूप होकर सावयव सा दीखता है स्वप्न का नाश जाग्रत में है जाग्रत का नाश स्वप्न में है इन दो नों का नाश सुषुप्ति में है सुषुप्ति का नाश इन दोनों में है तिस करके इन तीनों अवस्था की असत्यता प्रत्यक्ष है सत्य तो वोही अपना आत्मा अद्वितीय परिपूर्ण है जो तीनों अवस्था में एक रस बना रहता है और सब को देखता जानता रहता है बुद्धि चैतन्य की सत्ता से जो कल्पना और रचना हृदय में करती रहती है

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

उसी का किया भयायह दृश्य वर्ग है यह सृष्टि दृष्टि मात्र ही है जब आँख बन्द की जावेगी तब कुछ न दीखेगा कान बन्द किये से सुना भी नहीं जायगा जब कि यह सब दृश्य वर्ग कल्पित किया भया अपना ही ठहरा तब केवल आप ही आप है और जैसे आदि अन्त में निरावयव निराकार है तैसा ही मध्य में जानो यह संसार प्रतीति मात्र उसी आत्मा निराकार का है अवयव और आकार कल्पित और असत्य है देखो जल को कोई आकार और अवयव नहीं है वोही जल ओला बन कर साकार प्रतीत होता है अन्त में फिर जल होजाता है ऐसे ही अन्न का रस वीर्य्य जिस में कोई अवयव नहीं है जब स्त्री की योनि में जाता है अंकुर अवयव होजाते हैं और भवनादिक जो दीखते हैं पंची करण कृत महा भूतों के कार्य कल्पित हैं जल से पृथ्वी उत्पन्न होय अणु मात्र के समूह में ईंट पत्थर चूना आदिक बन कर उसके समूह से भवन प्रतीत होते भये भवनों के समूहों का नाम मोहल्ला भया मोहल्लों का समूह नगर प्रतीत भया जैसे वृक्ष और बन ऐसे ही वर्ण अर्थात् अक्षर कि वायु के आघात करके आकाश से शब्द भया तिस से अक्षर कल्पना किये गये अक्षरों के समूह के पद और श्लोक बने

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ऐसे ही ये दृश्य वर्ग के अवयव और आकारों को कल्पित और असत्य जानो ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् जब कि यह सारा प्रपंच वास्तव में असत्य और मिथ्या ठहरा और बिना एक चैतन्य ज्ञानानन्द स्वरूप के दूसरा पदार्थ न ठहरा तो सुख दुख ज्ञान अज्ञान बन्ध मोक्ष किसको होता है और अपना आत्मा जो सदा प्राप्त है ताकी प्राप्ति के लिये और अज्ञान और बन्ध के दुख के हेतु कर्म उपासना ज्ञान के साधन वेद ने किस के लिये उपदेश किये हैं प्राप्त वस्तु की प्राप्ति की इच्छा और नित्य निवृत्ति का उपाय बनता नहीं है इस संदेह को दूर कीजिये ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य चैतन्य परिपूर्ण सर्वदानन्द नित्य मुक्त ही है बन्ध और दुख का उस में लेश नहीं है उस की शक्ति अचिंत्य और अनिर्वाच्य है ईक्षण शक्ति करके अपोहन शक्ति भी उसी की है जब अपनी कल्पना करके मायोपहित ईश्वर कहलाया तो यहां तक ज्ञान शक्ति की लीला करता भया और मलिन माया आभासी अविद्योपहित जीव कहलाया वहां अपोहन शक्ति में लीला करता भया अपने निज स्वरूप को भूल कर मन इन्द्री आदिक के धर्म आरोपित कर सुख दुख ज्ञान अज्ञान बन्ध मोक्ष का भागी वो चिदाभास है तिसके लिये वेद का उपदेश

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और साधन वर्णन हुये हैं क्योंकि भ्रांति करके जो देह-
धारी को मिथ्या अध्यास कृतत्व भोकृत्व का अभिमा-
न जो बन्धन रूप है उसी के मिटाने के वास्ते वेदान्त औ-
र सद्गुरु के उपदेश साधन रूपी वर्णन हुये हैं अपना
आत्मा चैतन्य अक्रिय अभोक्ता सर्वानन्द साक्षी बना
हुवा है जब तक कि पूर्ण ज्ञान होकर सर्वा भाव षष्ट
और सप्तम अवस्था पर पहुंच कर अपने निज स्वरूप
में स्थित नहीं होता तब तक गुरु वाक्य वेद अनुसार
साधन ही अवश्य है ज्ञान हुये पीछे जो दूसरा पदार्थ
नहीं रहता तो फिर इस को कुछ कर्तव्य नहीं है न
बन्ध है न दुख है और प्राप्ति अवस्था में भी प्राप्ति ब-
नती है जैसे किसी का गले का गहना है तो गले ही में
है परन्तु न देखने से ऐसा भ्रम हो जाता है कि मेरे ग-
ले का गहना कहीं जाता रहा जब दूसरा बतला देता
है तो कहता है कि मिल गया भ्रान्ति जन्य दुख मि-
ट जाता है ऐसे ही भूलने से जो भई भ्रांति इस का मि-
ट जाना ही ब्रह्म की प्राप्ति जानो यद्यपि प्रपंच असत्
होने करके निवृत्त रूप ही है परन्तु भ्रान्ति करके जो
प्रतीत हो रहा है तो निवृत्ति की भी निवृत्ति बनती
है जैसे रस्सी में भुजंग तीन काल में नहीं है परन्तु ति-
मिर रूपी भ्रान्ति से जो भुजंग दीखता है सो बतलाने

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दूसरेके अथवा दीपक के प्रकाश से भुजंग की निवृत्ति होजा-
ती है ऐसे ही जगत की निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्म का ज्ञान है
प्रश्न ॥ हे स्वामी सब देह धारियों ने सुख का प्राप्त
होना विषय से मान रक्खा है और दुःख की निवृत्ति
का वर्त्ताव और उपाय इस भांति करते हैं कि जो रोग
जन्य दुःख हुवा तो उसका उपाय औषध से कर ले-
ते हैं दरिद्रता के दुःखका उपाय उद्यम करने और धनके
संग्रह करने से करते हैं क्षुधा और पिपासा के दुःख
का उपाय अन्न और जल से शीत और उष्ण के दुःख
का यत्न वस्त्र से करते हैं ब्रह्म की प्राप्ति के सुख का
तो कोई इच्छा नहीं करता है न उस में मन लगता है
क्योंकि जो वस्तु अदृष्ट है उस का अनुभव और उसके
प्राप्ति की इच्छा इस मन स्वावी से क्योंकर बने तिस
कारण मुमुक्षुता क्यों कर बने ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य
आदि भूत और आदि देव अध्यात्म तीन भांति के
दुःख जगत में हैं तिस की निवृत्ति का उपाय नेम करके
औषध आदिक से नहीं बन सक्ता है कदापि कोई
रोग औषध से दूर भी भया तो दूसरा रोग उत्पन्न हो-
गया अत्यन्त करके निवृत्ति नहीं होती और अन्त-
र्य्य चिन्ता और विक्षेपता का बड़ा दुःख है सो औष-
ध के वश का नहीं संसार में सर्व सुखी कोई भी नहीं

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

है किसी को धन की किसी को सन्तान की किसी को रोग की किसी को वैरी की किसी को दुष्टताई अपने कुटुम्ब की और सब को जरा मरण की चिन्ता भयब-नी रहती है जब ताईं देहधारी ने मिथ्या प्रपंच को स-त्य मान कर अहंमता और ममता में वृत्ति लगा रक्खी है तब ताईं दुःख ही दुःख है और जो किंचित्मात्र सु-ख जो प्राणी ने विषय की प्राप्ति में मान रक्खा है सो सुख भी अपने ही आत्मा का है विषय में सुख नहीं है किसलिये जब किसी को विषय के पदार्थ की इ-च्छा होती है चित्त में विक्षेपता उत्पन्न होती है जब वो पदार्थ प्राप्त हुवा तो क्षण मात्र को अपने आत्मा का प्रति बिंब बुद्धि में ठहरा विक्षेपता दूर हुई यही सुख का स्वरूप है फिर दूसरे पदार्थ में जो वृत्ति बहि सुख-हुई वो सुख नहीं रहता है जैसे किसी का पुत्र बहुत दिनों में आन कर मिला जैसा सुख प्रथम मिलने से होता है फिर यद्यपि वोही पुत्र सदा समीप भी रहै। नहीं होता इसी तरह स्त्री मैथुन स्पर्शादिक को भी जानो तैसे ही इच्छा जो भोजन के पदार्थों में हो-ती है प्राप्ति के समय जो आनन्द का प्रति बिंब ठह-र कर सुख होता है पेट भरे पीछे कैसा ही उत्तम प-दार्थ भोजन का रक्खा रहो इच्छा नहीं होती और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सुख भी नहीं होता तिस कारण विषय सुख का कारण नहीं अपनाही आत्मा सुख की प्राप्ति का कारण है देखो और विचारो सुषुप्ति अवस्था में कोई विषय नहीं होता है और सब प्राणियों को उस अवस्था में पूर्ण सुख की प्राप्ति रहती है तैसे ही जब ताईं प्राण आरूढ़ चैतन्य प्रकाशक देह का है तभी ताईं सुख की प्राप्ति है प्राण रहित शरीर को कैसे ही उत्तम पदार्थ रक्खे रहो कुछ सुख नहीं होता और जो तुम कहते हो कि ब्रह्म अद्दष्ट है तो उस के सुख का अनुभव कैसे हो सके है सो जीव आत्मा जो सब प्राणी मात्रों को अत्यन्त प्रिय है सो उसी सच्चिदानन्द का आभास है सो सदा उसी करके सब के हृदय में सुख का अनुभव होता है सो अपना स्वरूप आत्मा सच्चिदानन्द घन सुख स्वरूप है आन पदार्थ में कुछ सुख नहीं है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन सत्य है सुख का कारण अपनाही आत्मा है यह तो मैं समझा परन्तु एक संदेह यह है कि जब आत्मा सदा सुख स्वरूप है और दुःख की इच्छा कोई प्राणी नहीं करता है तो फिर यह दुःख कहां से आजाता है और ऐसे आत्मा सुख रूप में दुःख का प्रवेश होना वि-ता और असंभवता का करता है। उत्त-

अपने आत्मा सच्चिदानन्द रूप में तो कदापि दुःख का लेश नहीं है अज्ञान दिशा में ममता करके यह मन प्रतिकूल ज्ञान करके दुःख मानता है अनुकूल में सुख मानता है अनुकूल ज्ञान में वृत्ति स्थिर रहती है सुख प्रतीत होता है प्रतिकूल ज्ञान में विक्षेपता होती है सुख नहीं रहता है दुःख माना जाता है इसी विक्षेपता के दूर करने को कर्म उपासना का वेद ने उपदेश किया है देखो रज्जु में सर्प नहीं भी है तो भी सर्प मान कर दुःख और भय को प्राप्त होता है सो रज्जु के ज्ञान से नाश हो जाता है और जो कर्म संचित हैं वो भोगे बिना मिटते नहीं ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी हो ज्ञानी जो अपने को देह नहीं मानता देह का सम्बन्ध समझ कर स्थिर रहता है विकल नहीं होता अज्ञानी जिस ने आपे को शरीर मान रक्खा है दुःखी होय विकल हो जाता है सो दुःख का कारण अज्ञान है इस अज्ञान के ही दूर करने में निवृत्ति दुःख की होती है॥ प्रश्न॥ हे महाराज आत्मा तो नित्य ज्ञान स्वरूप प्रकाशवान् सर्वत्र व्यापक है फिर उस में यह तम रूपी अज्ञान क्योंकर भया क्योंकि जहां प्रकाश होता है वहां तम नहीं रहता और अज्ञान के कारण

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

को जो अविद्या कहते हो उसका क्या स्वरूप है ॥
॥ उत्तर ॥ हे शिष्य षट् ऊर्मी शोक १ मोह २ क्षुधा ३ पियासा ४ जरा ५ मृत्यु ६ पंच तन्मात्रा। ज्ञान इन्द्री द्वारा अहं वृत्ति लिये हुये भान होती हैं इसी का नाम अविद्या है यही अविद्या का स्वरूप है आत्मा इन से न्यारा है और यह सब धर्म और क्रिया अन्तःकरण और प्राण के हैं अज्ञान और मिथ्या अहंकार करके शरीर धारी अपने में मान दुखी और विकल होता है यही बन्धन का हेतु है और पांचों तन्मात्रा बुद्धि आदिक शुद्ध सत्तागति करके सन्तोष पूर्वक परमात्मा में लगावे शुद्ध कहलाता है जब ताईं इन षट् ऊर्मियों का विकार बना हुवा है तब ताईं अविद्या और अज्ञान दिशा है सोई दुःख रूप है सहनता और सन्तोष वृत्ति करके विकार की निवृत्ति होती है वास्तव में तो अपना आत्मा सदैव प्रकाशवान ज्ञानस्वरूप ही है तम का लेश उस में नहीं परन्तु अविद्या की उपाधि अज्ञान अवस्था तम दिखलाती है जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा यद्यपि प्रकाश स्वरूप हैं परन्तु वृक्ष और गृहादिक की उपाधि करके जहां ये उपाधि हैं वहां तम प्रतीत होता है जहां ये उपाधि नहीं हैं वहां पूरा प्रकाश है इसी भांति

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ईक्षण शक्ति और अपोहन शक्ति चैतन्य की जो स्वाभाविक और अनिर्वाच्य हैं अन्तःकरण सबों के में लगी हुई है तिसी उपाधि के दूर करने को गुरु और वेद का उपदेश है ॥ प्रश्न ॥ हे स्वामिन् आवागमन और स्वर्ग नरक सत्य है अथवा असत्य है और किस को है ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य यद्यपि आवागमन कल्पना ही मात्र है तदपि अज्ञान अवस्था में वासना अनुसार सत्य प्रतीत होता है ज्ञान अवस्था में असत्य है जैसे स्वप्न अवस्था में स्वप्न के पदार्थ सत्य प्रतीत होते हैं वोही पदार्थ जाग्रत पीछे असत्य होजाते हैं सुषुप्ति में पदार्थ जाग्रत और स्वप्न दोनों के असत्य हैं किसलिये कि इन दोनों अवस्थाओं के पदार्थों का नाश सब को सुषुप्ति में प्रतीत होता है अज्ञान अवस्था के किये भये कर्म संचित जिन से प्रारब्ध बनता है जब तक वो भोग नहीं लिया जाता है वासना बनी रहती है ज्ञान अवस्था दृढ़ नहीं होती है तब ताईं अहंमता ममत्व भोक्ता देह अध्यास आवागमन स्वर्ग नरक सुख दुःख बना रहता है जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के उपरान्त चौथी अवस्था तुर्या भी है सप्तम भूमिका में प्राप्त होती है जहां सब का अभाव है और शरीर की दो अवस्था और भी कही गई हैं मूर्छा और मरणा मूर्छा अवस्था को सब जानते

हैं जिसमें ५ पांचौं ज्ञान इन्द्री और ५ पांचौं कर्मेन्द्री थकित हो जाती हैं अर्थात क्रिया से हीन हो जाती हैं और मरण अवस्था यह है कि प्राण वायु नीचे के शरीर से खींच कर हृदय में जब आती है नीचे का शरीर बेकार हो जाता है देह अध्यास की वृत्ति कारण शरीर में लय होजाती है मन बुद्धि इन्द्री आदिक सहित सूक्ष्म बीज वासना के लिंग शरीर में लय हो जाता है स्थूल शरीर अचेत होकर गिर जाता है लिंग शरीर अपंची कृत अदृष्ट को यातना शरीर और कर्म शरीर भी कहते हैं चित्त की भावना और वासना के अनुसार आवागमन स्वर्ग नरक भी देखता है और भोगता है फिर पूर्व शरीर की क्रिया के अनुकूल भौतिक शरीर अर्थात दूसरा स्थूल देह गर्भ में धारण करता है और जो ज्ञानी हैं तो निर्वासना होने और कर्मों के दग्ध हो जाने से कहीं आता जाता नहीं अपने आत्मा सच्चिदानन्द में लीन होजाता है पुनर्जन्म नहीं होता इस देह में ही अनेक साधन ज्ञान भक्ति करके और अपने पुरुषार्थों के समूह करके जो लिंग शरीर जिस को पुरियाष्टक भी कहते हैं टूट जाय तब मोक्ष का भागी होता है पुरीयाष्टक की भांति ये हैं पंच कर्मेन्द्री १ पंच ज्ञानेन्द्री २ पंच प्राण ३ पंच महाभूत सूक्ष्म ४ चारों अन्तःकरण ५

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वासना ६ काम ७ ज्ञान शक्ति आदिक पांचों शक्ति ८ और ये पांचों शक्ति चैतन्य की ये हैं क्रिया शक्ति १ ज्ञान शक्ति २ इच्छा शक्ति ३ स्मरण शक्ति ४ अपोह्न शक्ति ५ सो हे शिष्य ये चिदा भास बुद्धि अविद्या मय अन्तःकरण सहित देह अभिमानी जिस को जीव कहते हैं तिस को आवागमन स्वर्ग नर्क कर्मों की वासना करके होता है शुद्ध चैतन्य साक्षी को कुछ नहीं होता है वासना कल्पना के मिटाने से शुद्ध स्वरूप की स्थिति होय आवागमन रहित होजाता है जैसे दग्ध भया बीज नहीं उपजता तैसे ही ज्ञान अग्नि से वासना रूपी बीज को दग्ध करदेना चाहिये ॥

प्रश्न ॥ हे भगवन् यह वासना और कल्पना जो जन्मानु जन्म से जीवात्मा में लगी चली जाती है क्योंकर दूर होय ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य उसी चैतन्य की ईक्षण शक्ति करके जिस से रचना प्रपंच की हुई तिस्से कल्पना और वासना अनेक जन्मों से बढ़ती चली आती है साधन और विचार कई जन्मों करके दूर हो सकते हैं निज स्वरूप अपना शुद्ध चैतन्य निर्विकल्प है और मन बुद्धि से परे है अन्तःकरण की वृत्ति चैतन्य आरूढ़ वासना कहलाती है तिसी का नाम मन है सो ज्ञान इन्द्री करके विषय विवश होय प्रपंच

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

खड़ा कर लेता है कल्पना आत्मा से भिन्न नहीं मन उस से भिन्न नहीं विषय इन्द्रियों से भिन्न नहीं विषय से प्रपंच भिन्न नहीं वृत्तियों का प्रवाह जगत् से फेर कर और अपने निज स्वरूप में स्थित करने से वासना की हानि होती है सब काल में अपनी वृत्तियों पर दृष्टि चाहिये यही अभ्यास मन इन्द्रियों के निरोध का है ऐसे करते करते कई जन्मों में अध्यास अनात्मा का छूट कर आत्मा का अध्यास हो जाता है इसी अनात्मा के अध्यास दूर करने को कर्मोपासना अनेक साधन वेद में कहे गये हैं शुद्ध तत्त्व ईश्वर जो सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् तिस का चिन्तवन और स्मरण नाम का मुख्य उपाय सुगम है तिस के करने से परमेश्वर अनुग्रह करते हैं ईश्वर अनुग्रह करके और मन बुद्धि विमल कर दुस्तर भव वारिधि से पार लगा देते हैं इसीलिये मुनि जनों ने भक्ति की उत्तम महिमा कथन की है अहर्निश स्मरण नाम का करना चाहिये अहंमता ममता रागद्वेषादिक के उद्वेग वृत्तियों के दृष्टि रखने से त्याग करता जाय भूत भविष्य वर्त्तमान का स्मरण और विचार इस विचार से किये प्रपंच कल्पना मात्र है अपने उद्यम

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

किये से कुछ नहीं होता है शरीर के प्रारब्ध करके
होता रहता है तिस कारण शोच विचार और उद्यम
जगत के पदार्थों में वृथा आयु खोना है परन्तु ज्ञान
भक्ति के साधनों में जब ताई साधन अवस्था है आ-
लस्य करके उपाय हीन क्षणमात्र को भी न हो
ना और यह भी विचार चाहिये कि विशेष धन सम्प-
त्ति स्त्री पुत्रादिक जो सर्व पदार्थ जगत् के नाशवान्
और कारण हानि भजन के उपाधि रूप हैं और विषय
में कुछ सुख नहीं है मेरे ही आत्मा का सुख है जैसा
हम पहले कहि आये हैं तिस में मन को नहीं भटका-
ना अनुद्वेग रहना चाहिये ॥ प्रश्न ॥ हे महाराज श्र-
वण और मनन और निदध्यासन आदिक अन्तरंग
साधन जो आपने पहले संक्षेप करके कहे हैं उनकी
रीति विस्तार करके फिर वर्णन कीजिये ॥ उत्तर ॥
हे शिष्य जो सत्य शास्त्र वेदान्त उपनिषद सूत्रा-
दिक हैं मन लगा कर उन का श्रवण करना इसी
को श्रवण कहते हैं और उस सुने हुए को याद रख
विचार करना कि शास्त्र ऐसा कहता है और मेरे म-
न का वर्ताव ऐसा है शास्त्र का अभिप्राय सत्य है-
अथवा मेरे मन का वर्त्ताव और प्रपंच का व्यवहार-
सत्य है पूर्ण सुख किस में है और मैं कौन हूं और

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

संसार क्या है परिणाम उस का क्या होगा इसी को मोक्ष कहते हैं और जब कि विचार और मनन से वेद और गुरु वाक्य अनुसार सत्य पदार्थ सुख प्रणामी को बुद्धि में निश्चय किया तो फिर अन्यथा का त्याग कर उसी सत्य पदार्थ में सब काल वृत्तियों का प्रवाह करना और सजाती और विजाती भेद का दूर कर देना उसी का नाम निदध्यासन कहते हैं सो प्रथम मनन में संशय विपर्यय का समाधान श्रवण और विचार और गुरु से प्रश्न करके करना होगा ब्रह्म के विशेषण अपनी आत्मा के विशेषण से मिलाने होंगे तब निश्चय होगी जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति को छोड़ कर चौथे पद तुरिय में रहना बनेगा योगवाशिष्ठ में तीन पुष्प शिव पूजा में वर्णन हुये हैं अपने आत्मा का ज्ञान १ शान्ति २ और शामता ३ इन करके शिव परमात्मा जो ब्रह्म निर्विकल्प शक्ति सहित जो आदि शक्ति मूल प्रकृति है तिस की नित्य पूजा करनी चाहिये मूल प्रकृति आदि शक्ति परमात्मा चैतन्य परिपूर्ण निर्विकार की न्यारी नहीं है विशेष्य विशेषण की नाईं है जैसे मणि और मणि की कान्ति सो एक ही जानना वो ही अद्वय शुद्ध निर्गुण ब्रह्म शक्ति सहित सगुण स्वरूप और जगत् रूप नाना भाँति और अनेक रूप में।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

भास रहा है सोई वो एक उपास्यदेव सब का है सगुण स्वरूप में शिव शक्ति राधा कृष्ण सीता राम विष्णु लक्ष्मी एक ही हैं चैतन्य चिद् शिला है ये जगत् उस शिला की लकीर है सो यही चैतन्य शक्ति पुरुष प्रकृति माया और विद्या और परा अचिन्त्य अनिर्वाच्य है वोही ब्रह्मा रूप होकर जगत् को रचती है विष्णु रूप हो पालन करे है शिव रूप हो संहार करे है आप ही समुद्र रूप होती है आप ही विष्णु रूप हो समुद्र में शयन करे है सो शक्ति निर्विकल्प चैतन्य से अत्यन्त अभिन्न है जन्मानुजन्म के अभ्यास से आत्मा को अनात्मा ब्रह्म चिदाकाश को जगत् अपने को देह मन इन्द्री वर्ण आश्रम दुःखी सुखी पापी पुण्यात्मा अहंकार करके इस शरीर ने मान रक्खा है सो यह अभ्यास का कारण है किसलिये किसदा से जैसा मा बाप इसको अभ्यास कराते आये तैसा यह अपने को मानता चला आया इसी को अज्ञान और यही अन्यथा भान है शुद्ध अन्तःकरण हुये पश्चात् जब सद्गुरु महावाक्य का लक्ष्यार्थ कराते हैं तब इस को अपने स्वरूप का ज्ञान होता है और अज्ञान का नाश होता है सो तूभी मिथ्या अभ्यास को छोड़ कर अपने निज स्वरूप में स्थित

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हो जायगा इस अध्यास का एक दृष्टान्त तुझ से कहा जाता है ॥ दृष्टान्त ॥ एक गांव में एक गडूरिया था उस के पास रेवर बकरियों का रहता था और उस गांव के निकट एक पहाड़ और बन भी था पहाड़ की खोह में सिंहिनी ने दो बच्चे दिये थे सो गड़रिया जो वहां जा निकला और सिंहिनी को वहां न देखा एक बच्चे को गडूरिया उठा लाया और बकरियों में उसको रक्खा और एक बकरी बच्चे वाली के नीचे लगा दिया बकरी के दूध से सिंह के बच्चे की पालना भई और बकरियों के रेवर में चरने लगा और बकरियों ही की बोली बोलने लगा अपने स्वरूप को भूल कर यह अध्यास उस को जम गया कि मैं भी बकरी का बच्चा हूं एक दिन पहाड़ पर एक सिंह ने आय कर देखा कि पहाड़ के नीचे एक रेवर बकरियों का चर रहा है और उन के साथ में एक सिंह का बच्चा भी है उस को आश्चर्य्य हुआ और उसने गर्जना की गड़रिये ने अपना रेवर गांव की तरफ़ को हांका बकरी वाला सिंह भी बकरियों के संग चलता भया जब पहाड़ वाले सिंह ने बकरी वाले सिंह को ठहराय कर पूछा कि तू कौन है उस ने कहा कि मैं बकरा हूं पहाड़ वाला सिंह हंस कर बोला कि तू किस तरह से बकरा है

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तू तो सिंह है तू अपने को किस तरह से बकरा बतलाता है और बकरियों के साथ क्यों पत्ते खाता फिरता है। तेरा भोजन तो मांस है उस ने कहा कि तुही सिंह होगा मैं नहीं हूं मैं तो बकराही हूं पहाड़वाला सिंह बोला कि तू मूढ़ है और अपने स्वरूप को भूल गया अपने हाथ पांव और पंजे को देख और बकरियों के खुरों को देख जो तू बकरा होता तो तेरे भी पांव और खुर और मुख भी बकरियों का साही होता सो नहीं है और मैं सिंह हूं मेरे हाथ पांव और मुख को देख कि जैसे मेरे हाथ पांव मुख हैं ऐसे ही तेरे हैं जब बकरियों के संगी सिंह ने अपने सब अवयव बकरियों से प्रतिकूल देखे और पहाड़ वाले सिंह के अनुकूल देखे तो मन में भ्रम और विस्मय उत्पन्न होता भया फिर पहाड़ वाला सिंह नदी के किनारे उस को लेगया और अपनी परछाहीं जल में उस को दिखाई और उसकी परछाहीं भी उस को दिखाई और कहा कि अब तू जल में अपने स्वरूप और मेरे स्वरूप को विचार करके देख और बकरियों के स्वरूप को भी देख तेरा स्वरूप मेरे स्वरूप से मिलता है जब बकरी वाले सिंह को निश्चय भया कि मैं सिंह ही हूं बकरा मैं नहीं हूं फिर उस सिंह से बोला कि मेरे हाथ और पांव और मुख

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सिंह के से ही हैं परन्तु मैं बकरा कैसे भया जब पहाड़-
वाला सिंह बोला कि तू बकरा तीन ३ कालमें भी नहीं
है तुझ को बाल्लकपनसे संग और अभ्यास बकरि-
यों का रहा है इसी से तू अपने को बकरा मानता है
सो यह मिथ्या अध्यास और कुसंग बकरियों का
छोड़ और मेरे संग आनन्द में विचर सो बकरी वा-
ला सिंह पहाड़ वाले सिंह के साथ विचरता भया
तैसे ही हे शिष्य जब सद्गुरु अपना आत्म स्वरूप
का लक्ष्यार्थ युक्तियों करके कराते हैं तब शिष्य
का मिथ्या अध्यास छूटता है मिथ्या अहंकार-
और मिथ्या अध्यास का त्याग चाहिये वेद ने जो
लक्षण और विशेषण ब्रह्म सच्चिदानन्द के कहे
हैं अपने आत्मा के विशेषण से मिलाने चाहिये
विशेषण ये हैं सत् १ चिद् २ आनन्द ३ ज्ञान ४
नित्य ५ निराकार ६ साक्षी ७ द्रष्टा ८ अजर ९
अमर १० जगत का कर्त्ता ११ भर्त्ता १२ अकर्त्ता १३
अभोक्ता १४ सो ये लक्षण आत्मा विशेष भाग के
तत्व अपने स्वरूप में देखने चाहिये सत् अर्थात
है सो सब जानते हैं कि हम हैं और सब कोई प्राणी
यह भी जानते हैं कि पूर्व कृत्य करके हम को यह फ-
ल मिला इस जन्म के कृत्य का फल आगे भोगेंगे

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तौ तीन जन्म का ज्ञाता हुआ और यह देह जो नाश हो जाती है असत्य है और यह देह धारी सत्य है ॥ हम सत्य हैं पहले भी थे आगे भी होंगे चिद चैतन्य के अर्थ हैं सो इस प्राणी को चैतन्यता प्रत्यक्ष है। क्योंकि बोलता चलता देखता सुनता है मरता पीछे देह जड़ हो जाता है आनन्द प्रिय वस्तु में है सब प्राणीमात्र को अपना जीवात्मा अत्यन्त प्यारा होता है सारे सुख इस जीवात्मा ही से भान होते हैं ॥ ज्ञान यह भी लक्षण तुम्हारे ही आत्मा का है सकल वस्तु और पदार्थ आत्मा ही करके जाने जाते हैं और इसी आत्मा से अपने निज स्वरूप का भी ज्ञान होता है ज्ञान स्वरूप का भी लक्षण आत्मा में है निराकार देखो तुम्हारे निज स्वरूप आत्मा में कोई आकार प्रतीत नहीं होता न आदि में न अन्त में न मध्य में और यह जो आकार देह का दीखता है सो नाश वान् है नित्य देह में बाल पन तरुणाई जरा अवस्था दुबलापन मोटापन सोवना जागना मरना जो प्रतीत होता है सो यह सब अवस्था देह की है सो आगमापायी और नाश वान् है अपना आत्मा इन अवस्थाओं में एकसा बना रहता है आत्मा की देह के साथ अवस्था नहीं बदली

जाती और नाश भी नहीं होता इसलिये नित्यता
जीव आत्मा की प्रत्यक्ष है साक्षीद्रष्टा विचार क-
रना चाहिये कि तुम अपने आत्मा ही करके अपने
को और अपने कर्मों को और सब को देखते हो औ-
र जानते हो तुम्हारा ही जीवात्मा सब का साक्षी और
प्रकाशने वाला और जानने वाला प्रत्यक्ष है परिपू-
र्ण ये लक्षण भी इस रीति से आत्मा में हैं कि यह
देह तो मथुरा में है और बनारस का ध्यान किया
तो क्षण मात्र में ही सब आकार और पदार्थ बना-
रस के अन्तर्य्य दृष्टि में आ जाते हैं जगत् का कर्त्ता
यह लक्षण भी तुम्हारे आत्मा में बना हुआ है प्र-
थम तो जाग्रत में ही अपने ही संकल्प विकल्प कर-
के प्रपंच जगत् का खड़ा कर लेते हो और स्वप्न अ-
वस्था में भी क्षण मात्र में ही एक प्रपंच तुम देख
लेते हो और जाग्रत में उस का नाश भी कर देते हो
और स्वप्न के स्वरूपों से व्यवहार भी करते हो तिस
कारण जगत् के कर्त्ता भर्त्ता हर्त्ता तुम हीं ठहरे अ-
पने ही आत्मा करके जगत् भासता है मरण पीछे
नहीं भासता है अजर अमर के भी लक्षण तुम्हारे
ही स्वरूप में देह के साथी न होने से पाये जाते हैं
कि तेरा स्वरूप आत्मा नित्य एकसा बना रहता है शरी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

جوگل سیواد-۷۲

मरण उस को नहीं देह को है अकर्त्ता अभोक्ता दे-
खना चाहिये कि तुम्हारा निज स्वरूप कोई कर्म्म
नहीं करता न भोगता है देह इन्द्रियादिक क्रिया
करते हैं सोई भोगते हैं बिना देह इन्द्रिय के क्रिया
भोग बनती नहीं तुम्हारा स्वरूप इन से न्यारा है मि-
थ्या अहं वृत्ति करके जो सुखाकार वृत्ति और दुःखा-
कार वृत्ति होती है सो भ्रम करके अज्ञान अवस्था
में मन का जो माना हुवा है इसी के मिटाने के वास्ते
उपदेश है इसी रीति करके विचार कर अपने स्वरू-
प को निश्चय करो ॥ प्रश्न ॥ हे स्वामीजो आपने उप-
देश किया सो सब सत्य है और मैं ने अपने निज स्वरू-
प को जाना परन्तु यह संशय और है कि आपने ब्र-
ह्म परमात्मा को आनन्द स्वरूप वर्णन कर ऐसा क-
हा है कि दुःख और क्लेश का आत्मा में लेश नहीं है
और दुःखाकार वृत्ति होने से ज्ञानी अज्ञानी सब को
ही अनुभव दुःख का होता है इसलिये अद्वैत और
सुख स्वरूपता में विकार प्रतीत होता है ॥ उत्तर॥
हे शिष्य पहले भी हम कह आये हैं और अब फिर
कहा जाता है कि यह दुःख और क्लेश अज्ञान का
कार्य्य है जब ताईं अपने स्वरूप का पूर्ण और दृढ़
ज्ञान नहीं होता और वृत्तियों का प्रवाह अच्छी तरह

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

नहीं होता दुःख माना जाता है ऐसा अज्ञान कार्य्य। अविद्या का है अविद्या एक अंग माया इच्छा शक्ति उसी ब्रह्म की है जो अत्यन्त अभिन्न है दूसरा पदार्थ नहीं है जिस्से अद्वैत में विकार आवे और अविद्या के हटने से आनन्द स्वरूपता में भी विकार नहीं आस- क्ता है ये सब प्रपंच पुरुष प्रकृति मय हैं जैसे जल का रस एक मधुरता और शीतलता है सो अदृष्ट और निरा- कार है रसना इन्द्रिय करके जाना जाता है और द्रवता औ- र श्वेतता जल का स्वरूप है सो मधुरता और शीतल- ता गुण द्रवता और श्वेतता स्वरूप से भिन्न नहीं तैसे ही परमात्मा सुख रूप ज्ञान स्वरूप अपनी इ- च्छा आदिक शक्ति लिये हुये प्रपंच रूप भान होर- हा है यह कर्त्तव्य अज्ञान द्वारा करके सुख दुःख क- र्त्ता भोक्ता अहंकार मोह का हेतु है तिस के दूर होने से दुःख का अभाव होता है अपना आत्मा अक्रिय अ- भोक्ता साधक बाधक नहीं मनन आदिक साधन क- रके जो निज स्वरूप में स्थिति होती है सोई दुःख र- हित और जीवन्मुक्ति है जैसे काष्ठ और काष्ठ के अं- दर की अग्नि जो ढकी भई और सामान्य है सो पर- स्पर की रगड़ से वो अग्नि विशेष भाव होकर उसी काष्ठ को जला देती है तैसे ही अन्तरंग की साधन

की रगड़ से ज्ञान अग्निप्रकाश होय कर्म और मिथ्या अध्यास जो दुःख रूपी हैं दग्ध करदेते हैं ज्ञानी अपने स्वरूप को जब निश्चय कर देह के ममत्ता को जिस्से दुःख प्रतीत होता है त्याग देता है विकल नहीं होता देखना चाहिये कि जिसने देह को और देहके सम्बन्धियों स्त्री पुत्रादिकों को जो मोह करके अपना मान रक्खा है उनके दुःख रोग मरणादिक से दुःखी होता है अपरजन के मरणादिक से कि अपनपो उस में नहीं माना है किसी को कुछ दुःख नहीं होता सो इस दुःख का कारण मोह और मिथ्या अहंकार और ममता मन का माना हुआ है इसी को दूर करना दुःख की निवृत्ति और आनन्द की प्राप्ति ज्ञान अवस्था है जिस करके विक्षपता वृत्ति जो दुःख का स्वरूप है दूर होना और अपने आत्मा चैतन्य में वृत्तियों का ठहराना यही सुख का स्वरूप है अन्वय व्यतिरेक का विचार वैराग्य सहित करके वृत्ति का जमाव होता है सो दुःख और क्लेश को दूर कर देता है ॥ प्रश्न ॥ हे स्वामी अन्वय व्यतिरेक किस को कहते हैं उसके साधन की विधि वर्णन कीजिये ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य व्यतिरेक की विधि यह है कि अपने निज स्वरूप आत्मा को विचार और गुरु वेद वाक्य युक्तियों सहित

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अनुभव करने से शरीर इन्द्रियादिक और प्रपंच जड़ पदार्थ से न्यारा निश्चय कर लेना है स्थूल शरीर पंचमहाभूत का कार्य्य नाशवान् है सो मैं नहीं हूं सूक्ष्म शरीर समूह ज्ञान इन्द्रिय अन्तःकरण का है सो उस को उस के देवता चला रहे हैं मेरे स्वरूप से न्यारे हैं यह भी मैं नहीं हूं प्राण वायु पांच स्वरूप करके शरीर में क्रिया कर रहे हैं यह भी मैं नहीं हूं अहंकार जो समीपी आत्मा का है इस में सत्य असत्य का विचार करना चाहिये जो असत्य पदार्थ हैं उन में अहंमता ममता का त्यागना सत्य स्वरूप आत्मा में धारण करना व्यतिरेक कहलाता है और अन्वय की रीति यह है कि जो यह सब देहादिक प्रपंच अपने ही आत्मा का कल्पित है सो कल्पना करने वाला अद्वय परिपूर्ण जगत्‌रूप है लय चिंतन की रीति में लय चिंतन इस को कहते हैं कि जो ईक्षण शक्ति आत्मा की है सोई भई माया त्रिगुणात्मक जिस्से पंच भूत उत्पन्न होकर संसार प्रकट भया फिर वही माया महा प्रलय के समय अथवा समाधि काल अथ सुषुप्ति अवस्था में सब दृश्य वर्ग को आपे में लीन कर ब्रह्म में लीन हो जाती है जब कि अपने ही कल्पना मात्र यह प्रपंच ठहरा तो केवल आपही ठहरा जैसे मकड़ी और मकड़ी का जाला ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

प्रश्न ॥ हे स्वामी आत्मा को ज्ञान स्वरूप आप वर्णन करते हो और ज्ञान अर्थ जानने के हैं सो प्राणी मात्र ज्ञान करके सब पदार्थों को ज्ञान ही करके जानते हैं और यह ज्ञान सब को प्राप्त है और अज्ञान न जानने को कहते हैं और ज्ञान अज्ञान से परस्पर विरोध है इसलिये अज्ञान का तो अभाव प्रतीत होता है फिर । आप अज्ञान किस को ठहराते हो ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य आत्मा ज्ञान स्वरूप ही है और जहां ज्ञान है वहां अज्ञान की समाई भी नहीं होती और अपने आत्मा करके ही सब को पदार्थों का ज्ञान होता है और आत्मा ज्ञान स्वरूप सूर्य्य और चन्द्रमा और दीपक की नाईं अपनी सत्ता करके प्रकाश देने वाला जैसा अपने स्वरूप के जानने में प्रकाशता है तैसे ही घट पटादिक के भी प्रपंच जनावना है जैसे जिस ने रज्जु को रज्जु जाना तिस में भी सत्ता ज्ञान स्वरूप की है और जिस ने भ्रम करके रज्जु को सर्प जाना सो भी आत्मा ही की ज्ञान स्वरूपता करके जाना क्योंकि आत्मा परिपूर्ण ज्ञान स्वरूप करके है परन्तु जिसने रज्जु को रज्जु जाना है तो यह जानना उसका सत्य और यथार्थ है अभय और सुख का देने वाला है और जिस ने सर्प जाना है सो भ्रांति करके जाना है सो असत्य है भय और दुःख का देने वाला है ।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सो इस का नाम अन्यथा भान है इसी को अज्ञान क-
हते हैं क्योंकि सत्य पदार्थ अपने आत्मा का न जान-
ना ज्ञान के प्रति कूल है वास्तव में ज्ञान वोही है जो
श्रवण मनन आदिक साधे से अपने निज स्वरूप आ-
त्मा अधिस्थान को जाने और असत्य पदार्थ प्रपंचादि-
क के जानने में ज्ञान की संज्ञा नहीं है वो अन्यथा
भान और अज्ञान ही गिना जायगा आत्मा के ज्ञा-
न में जैसे प्रपंच नाश होजाता है उसी द्वारा अज्ञान
का भी नाश हो जाता है तिमिर प्रकाश की नाईं ज-
हां प्रकाश है वहां तिमिर नहीं जहां प्रकाश नहीं है
वहां तिमिर है यद्यपि जानना तो अपने आत्मा का स्व-
रूप ही है परन्तु भ्रम करके कुछ का कुछ जानना इ-
सी अन्यथा भान को अज्ञान कहते हैं और जब ज्ञान
आत्मा सुख रूपी की प्राप्ति होते ही अज्ञान दुख रूप
की निवृत्ति है ॥ प्रश्न ॥ हे स्वामी स्वप्न और जाग्रत
और सुषुप्ति और तुरीय चार अवस्था आपने जीवात्मा
की वर्णन की हैं सो स्वप्न और जाग्रत की प्रतीति भि-
न्न भिन्न मालूम होती है सादृश्यता नहीं है इस भांति
करके कि प्राणी मात्र को स्वप्न अवस्था न्यारी न्यारी
होती है एक के स्वप्न की दूसरे को ख़बर नहीं होती
है और नित्य नई सूरत का स्वप्न होता है और थोड़े

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

काल रहता है जाग्रत अवस्था में सब देह धारियों को जन्म से मरण ताईं एक से ही पदार्थ दीखते हैं जो पदार्थ भोजन वस्त्रादिक और देश भ वनादिक और देह के सम्बन्धि जैसे कल्ल थे वैसे ही आज प्रतीत होते हैं तो स्वप्न अवस्था और जाग्रत सादृश्य नहीं प्रतीत होती हैं परन्तु सुषुप्ति और तुरीय एकसी ही प्रतीत होती हैं जो तुरीय में देह इन्द्रिय मन बुद्धि और प्रपंच का अभाव होता है सोई सुषुप्ति अवस्था में अभाव हो जाता है और यह सुषुप्ति अवस्था सब प्राणी मात्र ज्ञानी अज्ञानी को एकसी होती है और आपने चौथी अवस्था तुरीय को ज्ञान अवस्था सातवीं भूमिका में अत्यन्त उत्तम और दुर्लभ वर्णन किया है इसमें क्या कारण है ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य स्थूल देह करके जो चैतन्य कूटस्थ अविद्योपहित है तिस की निद्रा और स्वप्न थोड़े ही काल की है ब्रह्माण्ड अभिमानी चैतन्य ईश्वर का स्वप्न दीर्घ काल का है जिस की सुषुप्ति अवस्था महाप्रलय है पिंड अभिमानी चैतन्य की स्वप्न अवस्था थोड़े काल की है तैसे ही सुषुप्ति भी उस की थोड़े ही काल की है जिस को नित्य प्रलय कहते हैं शुद्धसत्त्वमयमाया में प्रतिबिंब ईश्वर माया के वश नहीं है माया को अपने वश कर रक्खा है समर्थ

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

और सर्वज्ञ है सोई विराट स्वरूप है जाग्रत अवस्था प्राणियों की ईश्वर की स्वप्न अवस्था जानो सो काल की लघुता दीर्घता का यही कारण है आत्मा ज्ञान स्वरूप की यह लीला है कि ईश्वर जीव दोनों में यथा योग्य सामर्थ्य और सत्ता और प्रकाश दे रहा है और अभिप्राय सुनो कि जो स्वप्न में प्रपंच तुम देखते हो तो जितने मनुष्य और पदार्थ स्वप्न के हैं सब रचे भये तुम्हारे ही हैं तुम भी उन से बोल चाल व्यवहार करते हो और वे स्वप्न के मनुष्य तुम से भी व्यवहारा-दिक करते हैं तैसे ही व्यवहार जाग्रत का जानो दूसरे स्वप्न और जाग्रत में यह नेम नहीं है कि समस्त पदार्थ नये ही हों अथवा पहले ही से हों सम विषम दोनों ही में हैं और यह विचार करना चाहिये कि स्वप्न प्र-पंच में देश काल और सामग्री एक क्षण में भान हो-ता है और जाग्रत समय एक क्षण में ही नाश को प्राप्त हो-ता है तो अपना ही आत्मा मन द्वारा करके सर्वरूप होजाता है तैसे ही जाग्रत प्रपंच को आगमापायी जानो चैतन्य की सत्ता करके मन बुद्धि की रचना दोनों अवस्था में समान है और सुषुप्ति और तुरीय में निर्विकल्पता तो समान है परन्तु सुषुप्ति में मन बुद्धि इन्द्रिय आदि का लय अज्ञान में है सो कल्याणकारी नहीं है और तुरीय अवस्था में मन बुद्धि इंद्रिय

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

आदिक का लय ज्ञानात्मा सुख स्वरूप में होता है। इसलिये यह चौथी अवस्था अति उत्तम कल्याणकारी नित्य सुख की भोग कराने हारी है सो सब को नहीं होती किसी महात्मा पूर्ण ज्ञानी को होती है इन दोनों अवस्थाओं में इतनाही भेद है और जगत् के गुणों में और चिदाकाश के गुणों में जो संशय और भेद है सो पहले भी हम कह आये हैं और फिर भी कहते हैं कि ये प्रपंच दृश्य वर्ग अज्ञान करके प्रतीत मात्र हैं वोही अद्वय आत्मा सोभाविक व्यापकता धारे हुये भास रहा है ऐसा दृढ़ निश्चय होजाना और मिथ्या अहंकार में तू से न्यारा हो निर्बासना होजाना मुक्ति का हेतु है जैसा गोसाईं तुलसीदासजी का कहा हुवा है॥ दोहा॥ सीतारामहिं छोड़कर और भेद्ये कौन॥ तुलसी देत बनै नहीं बड़े बड़े में नोन॥ दोहा॥ तुलसी सीताराम को भजत न कीजै शंक॥ आदि अन्त प्रति पाल है जैसे नव का अंक॥ हे शिष्य जगत को पुरुष प्रकृति सीताराम शिव शक्तिमय एकही रूप हैं जानना चाहिये मिथ्या अहंकार और वासना का त्याग चाहिये॥

प्रश्न॥ हे स्वामी जब कि अपना स्वरूप अद्वय अक्रिय व्यापक निश्चय भया और यह दृश्य वर्ग कल्पित ठहरा तो साधन कर्म उपासना आदिक जो बन्धन रूप मोक्ष के विरोधी प्रतीत होते हैं किस हेतु हैं॥ उत्तर॥ हे

शिष्य पहले भी हम कह चुके हैं और फिर कहते हैं जै-
से जगत् कल्पित है कर्म उपासना भी कल्पित ही हैं
परन्तु निष्काम कर्म भगवद्भजनादिक अन्तःकरणशु-
द्धि हेतु सहायक ज्ञान का है जब ताईं प्राणी को देह
और देह के सम्बन्धियों का अध्यास ममता का बना
हुवा है तब ताईं कर्म उपासना ही कर्त्तव्य है शास्त्र
ने सात जो भूमि का वर्णन की हैं जिन में शुभ इच्छा
१ स्वविचारना २ तनो मानसा ३ सत्तापत्त ४ ये चार
भूमि का तो साधन रूप हैं और पदार्थाभावनि और
असंगत और तुरीय ये तीन अवस्था सिद्धि रूप हैं सो
ये सातों अवस्था कई जन्म में भुगतती हैं इसलिये
गुरु वेद वाक्य अनुसार साधन करना अवश्य है अप-
ने सत्य स्वरूप में निश्चय भये उपरान्त कर्तत्व भोक्ता-
त्व नहीं रहता इन साधनों को करते करते वृत्तियों औ-
र अहंकार का प्रवाह अनात्मा की ओर से हटाना और
परमात्मा की ओर प्रवाह करना चाहिये और भक्ति का
आसरा रखना चाहिये कार्य अकार्य में शास्त्र के वा-
क्य को सत्य और प्रमाण जानना चाहिये मलिन वा-
सना और मलीन कर्म जन्म मरण दुःखों के हेतु हैं शु-
भ कर्म और शुभ वासना मन बुद्धि के निर्मल करने
वाले परम पद के प्राप्त कराने हारे हैं उपासना के २ दो

अंग हैं एक सगुण द्वितीय निर्गुण प्रथम सीढ़ी सगुण उपासना है उसके परिणाम में प्रत्येक और अहंग्रह निर्गुण उपासना की प्राप्ति होती है प्रत्येक उपासना में दास और स्वामी का भाव बना रहता है और अहंग्रह में द्वैत भाव और द्वैत और भेद का अभाव है एक अद्वय ब्रह्म मैं हूं मेरा ही कल्पना किया भया प्रपंच दृश्य वर्ग है अपनी वृत्ति में ऐसा दृढ़ करना होता है सो साधन सगुण उपासना और भेद भक्ति करते करते समय पर किसी जन्म में अभेद भक्ति का दृढ़ अपने स्वरूप में स्थिति हो जाता है उसी को प्रेम कहते हैं उसी को ज्ञान कहते हैं वोही जीवन्मुक्ति है सगुण स्वरूप की उपासना में जिस भावना से चित्त जमाया जाय किसी काल में अपना आत्मा ही सच्चिदानन्द स्वरूप भावना अनुसार साक्षा दृष्टान्त देकर कृतार्थ कर देता है जैसे कि पहले भक्त जनों को साक्षात् ईश्वर के दर्शन हो कृतार्थ भये हैं आत्मा के धाम का पंथ कर्म उपासना निष्काम और नवधा भक्ति है बिना आलस्य के शास्त्र के वाक्य का प्रमाण करके जैसा सोलहवें अध्याय गीता जी के में श्री कृष्णजी ने वर्णन किये हैं श्लोक ॥ यः शास्त्र विधि मुत्सृज्य वर्त्तते काम कारतः ॥ न च

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥२३॥ तस्मा-
च्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्या कार्य व्यवस्थितौ ॥ ज्ञात्वा
शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्त्तु मिहार्हसि ॥ २४ ॥
विचार के समय मन की वृत्ति पर जो प्रतिबंधक है
दृष्टि रखनी चाहिये जैसे भूत काल व्रात का जो मन
को स्मरण होता है अर्थात् पहले हम ने ऐसा किया
सो ऐसा भया ऐसा करते तो ऐसा होता सो ये व्यर्थ। औ-
र विक्षेप के बढ़ाने हारे होते हैं इन संकल्प विकल्पों
से मन को हटाना ऐसे ही भविष्यत्काल के इस
विचार से कि भावी प्रबल है अपना किया कुछ होता
नहीं यह प्राणी विचारता कुछ है और होता कुछ है
प्रकृति प्रेरणा करके आप करा लेती है और आयु औ-
र प्रारब्ध फल देती रहती है। इस में भी शोच विचार
करना व्यर्थ है और वर्त्तमान काल अति सूक्ष्म है
इस में जैसा आगे आया बिना हर्ष शोक के शरीर का
प्रारब्ध समझ भोग लेना चाहिये इसीभांति अपनी
वृत्तियों पर दृष्टि रख उपाधी दूर करता रहे और पर-
मेश्वर उपास्यदेव के आराधन और ध्यान विचार में
अपनी वृत्तियों को लगाये रहे जिस्से तदाकार वृत्ति
होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाय और अपने अ-
न्तर्य रोगों का अहर्निश विचार करता रहे और शास्त्र

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

के कथन से अपनी कृत और सुभाव को मिलाता रहै जो खोट देखै और शास्त्र के प्रतिकूल जाने उन को पुरुषार्थ प्रयत्न करके दूर करता रहै फिर सद्गुरु ब्रह्मनिष्ठ की शरण हो क्योंकि वेद पुराण धन को बतलाते हैं और सद्गुरु धन को दिखला देते हैं इस का दृष्टान्त सुनो ॥ दृष्टान्त ॥ एक साहूकार था जब मरण काल उस के समीप आया तो एक बीजक धन का उसने पुत्रों को दिया कि इतना धन मन्दिर के कलश से इतने हाथ पर चैत सुदी ८ को पहर दिन चढ़े रक्खा है जब सन्तान साहूकार के पास ऊपर का धन नहीं रहा तब उसने बही के पन्ने में बीजक देख कर दोनों मन्दिर जो साहूकार के बनाये हुये थे शिखर और आसपास शिखर के खुलवा कर और खुदवाकर ढूंढ़ा धन नहीं मिला एक समय कोई महात्मा उस नगर में आ निकला उन महात्मा से साहूकार के पुत्रों ने बीजक दिखा कर न मिलना धन का वर्णन किया उस बुद्धिमान् ने अपने मन में विचार कर बीजक के अर्थों को निश्चय किया और कहा कि तुम हम को चैत सुदी ८ के प्रातःकाल में बुला लेना हम बीजक के धन का उपाय बतावेंगे सो चैत सुदी ८ का जब दिन आया तो साहूकार के पुत्र उस महात्मा को बुलाय लाये ।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

महात्मा ने पहर दिन चढ़े मन्दिर केशिखर की छा-
या हाथों से नापी और बीजक में जितने हाथ का
पता लिखा था उस जगह को खुदवाया सो धन निक-
ल आया ऐसे ही हे शिष्य सद्गुरु विचारमान परम ध-
न आत्मा रूपी की प्राप्ति करा देते हैं बिना सद्गुरु की
कृपा के वस्तु का लाभ नहीं होता योगवाशिष्ठ के
निर्वाण प्रकरण निआख्यान है कि बुद्धि जो माया के
अंश से है और माया ईक्षण शक्ति चैतन्य की है उस
बुद्धि में सब के हृदय में चैतन्य परिपूर्ण प्रतिबिंब वत् है
यद्यपि बुद्धि कल्पित चैतन्य की है परन्तु प्रतिबिंब के
चकाचक से चैतन्य और बुद्धि के परस्पर अन्योन्य
भाव होइ रहे हैं और चिद् ग्रंथी लग आत्मा अपने गु-
णों और स्वरूप को तो भूल गया और बुद्धि के गुण मि-
थ्या अहंकार में प्रवृत्त भया और चैतन्य के चिदानन्द
ज्ञानादिक चेष्टा बुद्धि में समा गई तिस का ही नाम
जीव भया जैसे अग्नि निरवयव निराकार है एक गुण
दाहकता से अग्नि जानी जाती है काष्ठ अथवा लोहादि-
क के मिलने से जो परस्पर भाव हुआ तो दाहकता गु-
ण अग्नि का काष्ठ और लोह में आया और आकार लं-
बा टेढ़ा गोल काष्ठ लोह को ले आदिक का अग्नि में
प्रतीत भया इसी भांति अन्योन्य धर्म चैतन्य और बुद्धि

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

से यह प्रपंच है वोही अद्वय आत्मा परि पूर्ण अपनी कल्पना से सत्ता और चैतन्यता बुद्धि को दिये हुये सब के हृदय में बुद्धि को नचा रहा है और मिथ्या अहंकार करके बन्धन रूपी कर्म में और मैं और तू के भ्रम में भ्रमता है यही मोह रूपी निद्रा है ता निद्रा का यह प्रपंच अनेक भांति करके स्वप्न देख रहा है हे शिष्य इस भ्रांति और मोह निद्रा का प्रयत्न करके मिटाना स्वरूप में स्थिति हो जाना है ॥ प्रश्न ॥ हे स्वामी धन्य हो आप की कृपा करके मेरे संशय विपर्यय दूर भये एक संशय थोड़ी सी रही है उसको भी निवृत्त कीजिये और वह यह है जबकि परमात्मा सर्व व्यापक अजर अमर ज्ञान स्वरूप सच्चिदानन्द घन एक ही है तिसका ही ध्यान स्मरण पूजन सब क्यों नहीं करते हैं सब का मत न्यारा न्यारा क्यों है कोई किसी को पूजता है कोई किसी को भजता है और अपने मत को उत्तम कहते हैं दूसरे के मत को न्यून कहते हैं और बहुत से जन विद्यावान भी पाषाणादिक प्रतिमा का पूजन करते हैं और कोई कोई प्रतिमा पूजन को अच्छा नहीं कहते वेद से प्रतिकूल बताते हैं और जो वैष्णव हैं सो शिव की निंदा करते हैं जो शैवी हैं सो विष्णु की निंदा करते हैं और जो कोई शक्ति के उपासक हैं सो शक्ति ही को मुख्य जानते हैं

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कोई गणेश जी को कोई सूर्य्य को कोई अग्नि ही को पूजते हैं तो यह निन्दा स्तुति और विपरीत विरोध मतों में हो रहा है इस का क्या कारण है और निश्चय कल्याण कारी किस की उपासना चाहिये ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य शास्त्र ने वास्ते कृतार्थ होने जीव के अनेक पंथ साधन रूपी दिखलाये हैं कि किसी पन्थ पर यह प्राणी चलकर धाम को पहुंचे तात्पर्य्य यह कि अच्छे सज्जन और मुनी प्रवरों ने प्राकृत मनुष्यों के उपदेश के समय जैसा उन का अधिकार और संस्कार देखा और जैसी उनकी रुचि और अन्तःकरण की वृत्ति देखी वैसा ही उपदेश किया और इन के पीछे जो उन की सन्तान और शिष्य होते गये उसी मार्ग पर चलते गये और कुछ पक्ष भी फैलता रहा वास्तव में तो परमेश्वर का धाम एक ही है रस्ते ही का फेर समझना चाहिये जैसे कोई एक नगर किसी देश में है और उसके कई रास्ते हैं पंथ के चलने वाले को चाहिये कि उन में से कोई एक मार्ग जिस का उपदेश गुरू ने किया है चला जाय चलते चलते आगे पीछे पहुंच रहेगा अपर मार्गों में मन का भटकाना और दोष का निकालना नहीं चाहिये क्योंकि प्रणाम सब मार्गों का वोही अद्वय सच्चिदानंद ब्रह्म का धाम है और सब उपास्य देवों का वोही आत्मा सर्वव्यापक है दूसरे सगुण उपासना का अभिप्राय

यह है कि चैतन्य निराकार अचिन्त्य परे से परे है जैसा गीता जी का लेख है कि इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा है तो प्रथम ही उपासना निर्गुण निराकार जो मन बुद्धि का विषय नहीं क्योंकर बन सके है और जन्मानुजन्म का जो प्रवाह इन्द्रियों का अनात्मा में चला आता है शीघ्र एक ही बेर उस प्रवाह का फेरना कठिन है और जो रोग अन्तःकरण में भरे हुये हैं सो बिना साधन और विचार रूपी औषध और त्याग रूपी पथ्य के क्योंकर दूर हो सकते हैं और यह पदार्थ ब्रह्मविद्या का मलीन अन्तःकरण में ठहर नहीं सकता तिस कारण भगवत् और भगवद्जनों सद्गुरु आचार्यों ने शिष्य के अधिकार और संस्कार की तारतम्यता विचार कर उपदेश कर्म उपासना सगुण रूप देवादिक का करते आये हैं सोई मत और मार्ग भये हैं साधन करने वाले को जो करते करते कुछ सिद्धि और सुख मिला उस में उसी पंथ की स्तुति कर ग्रंथ रच दिया अपरजन को दूसरे साधन से कुछ सिद्धि मिली उस ने उस रीति करके अपना मत खड़ा कर दिया शिष्य के निश्चय कराने के हेतु अपने उपास्यदेव की बड़ाई अपर देवादिक की न्यूनता वर्णन कर दी वेद में जो मुख्य उपासना विष्णु और शिव और भगवती शक्ति

और गणेश और सूर्य्य नारायण की धूपंच प्रकार कर आदि से वेद में लिखी हुई है सो वेद अनुकूल उपासना तो कर्त्तव्य और कल्याण कारी है और जो मत पीछे वेद प्रतिकूल अपनी अपनी मति अनुसार रच लिये हैं सो अकर्त्तव्य हैं और इस देह धारी के उद्धार निमित्त जो वेदने वर्णन किये हैं तिन में पहली भूमिका शुभ कर्म निष्काम मल के रोग को दूर करने वाली है दूसरी भूमिका उपासना है जिस को भक्ति कहते है चित्त की विक्षेपता दूर करने वाली और मन को एकाग्र करने वाली है सो शास्त्र की रीति करके जो ये दोनों साधन किये जावें तब यह प्राणी ज्ञान का अधिकारी होता है इस काल में वेदविहित कर्म उपासना निष्कामता से कम होते हैं कामना लिये हुये लोकरंजन विषय रूपी जो अनेक मत फैल गये हैं तिस कारण सिद्धि और शांति के पद की प्राप्ति बहुत कम होती है आवागमन पुण्य पाप का फल भोगा बना रहता है अध्यात्म विद्या विशेष करके कथन मात्र ही रह गई है वैराग्य और तितिक्षा विचार और समता गृहस्थियों और वेषधारियों में भी बहुत कम कहीं कहीं प्रतीत होता है उपासना के पंथ जो वेदोक्त हैं यद्यपि भिन्न भिन्न भी हों और निन्दा स्तुति भी हो करने योग्य हैं और उन की न्यारी न्यारी रीति और सम विषमता

निन्दास्तुति पर दृष्टि करनी नहीं चाहिये क्योंकि परिणा-
म धाम तो सब मार्गों का एक ही है और वही एक अ-
नूप चैतन्य व्यापक सब रूपों में फलदायक है जिस
स्वरूप की उपासना जो गुरू ने बताई है उसी को सर्वो-
परिज्ञान कर मन की वृत्ति जमानी चाहिये और सब में
उसी अपने उपास्यदेव को विचारना और देखना चाहिये
सतोगुण के सहारे से रजोगुण तमोगुण घटाना और
मन के विकारों को हटाना चाहिये संचित कर्म शुभाशु-
भ के अनुसार देहधारी का स्वभाव और बासना होती
है सो जो मलीन बासना और अशुभ संस्कार पिछले
कर्म करके अपने हृदय में प्रतीत होते हैं सो ईश्वर
आराधन आदिक शुभ साधनों से दूर हो जाते हैं य-
द्यपि गुरू और वेद अधिकार देख कर अनेक भांति
करके उपदेश करते हैं तिस करके ही अनेक मत और
साधन हो गये हैं तदपि दृढ़ता और निश्चय एक ही
में कर विचार करता रहे और वेद के प्रतिकूल न च-
ले और गुरू आचार्य्य भी जैसे लक्षण पहले हम क-
ह आये हैं निर्लोभ दयावान् विद्या वैराग्य संयुक्त
ढूंढ़ने चाहिये जो गुरू दीक्षा देने वाले में लोभ औ-
र विकार होगा तो उसका उपदेश कल्याणकारी न
होगा और शिष्य भी ऐसा ही होय जैसे पहले लक्षण हम

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कह आये हैं अपने उपास्यदेव में दृढ़ करे और सब ओर मन का भेद कावना विपरीत विरोध निन्दास्तुति पर। दृष्टि कर वाद करना अनुचित और अकल्याणता है गीताजी में श्री कृष्ण महाराज ने वर्णन किया है कि मैं ही एक सब में हूं भावना अनुसार जिस रूप का। उपासक होय उसी रूप में उसको दर्शन और फल देता हूं और प्रतिमा का पूजन भी शास्त्र से विरुद्ध नहीं है प्रथम चित्त के जमावने और भक्ति बढ़ावने के हेतु एक साधन उपासना के ही अंग में से है गीता जी के वारहवें अध्याय के ९ नवें श्लोक में श्री कृष्ण महाराज ने अर्जुन को उपदेश किया है कि जो और साधनों में तेरा चित्त नहीं लगे तो प्रतिमा पूजन में मन को लगाओ और मेरी लीला चरित्र और गुणानुवाद करते रहो सो मुझ को प्राप्त होगे और ऐसा ही उपदेश प्रतिमा पूजन का एकादश स्कन्ध ११ भागवत में उद्धव जी प्रति भया है यद्यपि यह साधन गुड़ियों का सा खेल है तदपि जो मनुष्य मति मन्द विद्या सामर्थ्य से हीन देखे उनके हेतु प्रथम प्रतिमा पूजन का ही साधन बतलाया गया है सो उस में इतनी बात है कि इस साधन वाला निष्कामता सहित विधि सहित प्रतिमा में ईश्वर अपने उपास्यदेव को जाने और निश्चय करे पाषाण बुद्धि न रक्खे और।

निषेधकाम्य कर्म से अपने मन बुद्धि को रोके और भगवत कीर्त्तन और श्रवण और सत्संग साधु गुरु सेवा में पुरुषार्थ करनेछा को बढ़ाता जाय क्योंकि गुड़ियों का खेल जो बाल अवस्था में लड़कियां खेलती हैं जब स्यानी हो विवाहादिक होजाता है सो जो चरित्र और खेल गुड़ियों के साथ करती थीं अपने में सो प्रतीति वो व्यवहार होने लगता है सो खेल गुड़ियों का आप ही आप छूटजाता है तैसे ही प्रतिमा पूजन आदिक साधनों में मन को जमाते जमाते ध्यान समाधि पर पहुंचजायगा प्रतिमा पूजन आप ही छूटजायगा और एक बात यह भी विचारनी चाहिये कि जब परमेश्वर परमात्मा एक सर्व व्यापी परिपूर्ण है और सब मतवाले उस की पूर्णता को मानते हैं तो पाषाणादिक में क्या उस का स्वरूप नहीं है सो इन पाषाणादिक मूर्त्तियों का पूजन वेद विरुद्ध और अनुचित नहीं है प्रथम सीढ़ी उपासना की यह भी है जेसे बालक को प्रथम ओनामासी आदिक का अभ्यास कराते हैं जिस से अक्षरों का पहिचानना और विद्या पढ़कर विद्यावान् होना बनता है तैसे ही इस आचरण को जानो दूसरे मन्दिरादिक बनाने और मूर्त्तियों के स्थापित करने में एक धर्म्म हेतु और पुण्यदान साधु सेवा का भी है किसलिये कि परमेश्वर के भक्त जनों को आराम मिलती है मन्दिर वाले को उनका

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सत्संग होता है किसलिये गृहस्थियों को गृह के का-र्य्यों से मोह ममता विक्षेपता रहती है सो थोड़े काल मन्दिर के जाने और रहने से एकान्त में श्रवण और साधुओं का दर्शन परमेश्वर का आराधन और ध्यान बनता है ऐसा ही करते करते मन की शुद्धि की भी प्राप्ति होती है और यह मार्ग प्रतिमा पूजन मन्दिर आदिक का परम्परा से चला आता है और इस के करते करते भक्तों को सिद्धि और परमेश्वर सगुण स्वरूप के दर्शन भये हैं सो अपना आत्मा चैतन्य अत्यन्त वृत्ति के जमाव से प्रत्यक्ष भाव अनुसार दर्शन और वर देता है प्रतिमा में पाषाण बुद्धि को चित्त से हटा कर अपना उपास्यदेव परमात्मा को सर्वव्याप क जान कर दृढ़ करै और जो कुछ बन सके भूखों और साधुओं के निमित्त विना फल की चाह के अन्न वस्त्रादिक दे और जो कोई पंडित आचार्य्य ज्ञानी आजावें उनको ठहरा कर उनसे सत्संग श्रवणादिक करै और मन्दिर का पुजारी विद्यावान् और त्यागी सज्जन और जितेन्द्रिय होना चाहिये पूजा भक्ति निरे झांझ बजाने और भोग लगाने का नाम नहीं है वेद विधि अनुसार पूजा सेवा और साधु सेवा विना राग द्वेष और विना विषय वासना कामादिक के कल्याण कारी है इस से प्रतिकूल अकल्याण

कारी है सो हे शिष्य जो तुमने प्रश्न किये थे सो उन का उत्तर तो हो गया अब तुम वैराग्य और अभ्यास करके कर्म उपासना वेदोक्त से अन्तःकरण की शुद्धि कर अपने निज स्वरूप आनन्द घन में स्थित हो जाओ उपासना आदि शक्ति सच्चिदानन्द स्वरूप की जो निर्गुण से सगुण स्वरूप भी वोही होती है और सब स्वरूपों में इसी की शक्ति व्यापक है और ब्रह्मा और विष्णु आदि सब देव उसी की उपासना करते हैं और शक्ति ही के बल करके ईश्वरता और ज्ञान स्वरूपता में सामर्थ्यवान् हैं मुख्य है भक्ति करके अन्तःकरण की शुद्धि शक्ति ही की कृपा से होती आई है ॥प्रश्न॥ हे स्वामी आपने अनुग्रह करके इस शरीर को कृतार्थ किया संशय विपर्यय तो नहीं रहे हैं परन्तु आप के अमृत रूपी वचनों से तृप्ति नहीं होती है जीव ईश्वर का स्वरूप यद्यपि पहले आपने वर्णन किया है तदपि विस्तार करके और श्रवण करना चाहता हूं ॥उत्तर॥ हे शिष्य दो सम्वाद जिज्ञासु और महात्मा के तुमसे कहते हैं सावधान हो के सुनो ॥प्रथम प्रश्न जिज्ञासु को यह है॥ कि शुद्ध ब्रह्म एक है उसी के प्रकाश करके माया उपाधि से सबल ब्रह्म ईश्वर और उसी ब्रह्म के प्रकाश करके और अविद्या की उपाधि

१०-९-४०

में जीव कहलाता है उपाधि में ये भेद हैं कि जहां सतो-
गुण विशेष है सो माया है जहां रजो गुण तमोगुण वि-
शेष है सो अविद्या है ईश्वर जीव में इतना ही भेद उ-
पाधि का अथवा कुछ और है और इन दोनों के स्वरू-
प और विशेषण क्या हैं और ये दोनों एक हैं अथवा
अनेक हैं ॥ उत्तर ॥ यद्यपि ईश्वर और जीव चेष्टा इस
अद्वय शुद्ध ब्रह्म के प्रकाश करके करते हैं तदपि गुण
और विशेषण दोनों के सम नहीं हैं ईश्वर की उपाधि
शुद्ध सत्व मय माया है सो उस माया को भी ईश्वर अप-
ने वशी भूत करके सर्वज्ञता सहित पूर्ण शक्ति सर्व साम-
र्थ्य युक्त अनेक चमत्कार धर्म साधक की चेष्टा करते हैं
और जीव की उपाधि मलिन और ज्ञान मय अविद्या है
सो यह जीव उस अविद्या के वश होकरके उस के आधी-
न शुभाशुभ कर्म धर्माधर्म रूपी करता है और भोग-
ता है ॥ श्लोक वेदांत ॥ माया बिम्बो वशी कृत्य तां-
स्यात सर्वज्ञे श्वरः॥ अविद्या वश गस्त्वन्य स्तद्व चि-
त्र पादनेक धेति ॥ १ ॥ बिम्ब शुद्ध ब्रह्म सच्चिदानन्द
स्वरूप माया को अपने वश में करके सर्वज्ञ होय ईश्व-
र पद को प्राप्त होता है तिस को ही सबल ब्रह्म सगुण
स्वरूप भी कहते हैं निर्गुण शुद्ध स्वरूप में कछु विका-
र न्यूनाधिक भाव नहीं होता सो वो ईश्वर माया को

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

वशी भूत करता भया धर्म साधक चेष्टा करता हैउसी चैतन्य स्वरूप को ईश्वर पद वाच्य जानो और वोही चैतन्य स्वरूप अविद्यावश होकर अपने सर्व व्यापकता ज्ञान स्वरूपता को भूल कर जगत् की ममता लिये हुये शुभाशुभ कर्म करता और भोगता है और भय आशा में क्लेश सहता है सोई जीव कहलाता है वास्तव में तो चैतन्य स्वरूप एक ही है परन्तु उपाधि का भेद है दोनों उपाधि द्वारा पृथक २ पद को प्राप्त हैं सो जीव अपने निज स्वरूप के अज्ञान और कृतत्व भोक्तृत्व के अभिमान से फँसा हुआ जन्म मरण आदिक दुख भोगता रहता है और ईश्वर के विशेषण पहले वर्णन हुये हैं अब शोचना चाहिये कि ईश्वर और जीव दोनों की चेष्टा और अवस्था और गुण सम नहीं हैं ईश्वर स्वाधीन धर्म उपकारक चेष्टा करते हैं जीव अविद्या के आधीन रज तम क्रिया में घिरा हुआ है जो यह जीव सतो गुण की सहायता से रजोगुण तमोगुण को त्यागता हुआ गुरु वेदान्त वाक्य करके साधन चतुष्टय सम्पन्न होय दृढ़ ज्ञान की प्राप्ति करे तो अपने निज सत्य स्वरूप आनन्द घन में लीन हो सकता है रजो गुण तमो गुण और विधि निषेध क्रिया और साधन और स्वभाव वृत्तियों के वर्त्ताव भोजन

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

व्यवहारादिक सहित सोलहवें अध्याय और अठारहवें अध्याय गीता जी में लिखा भया है॥ दूसरा प्रश्न जिज्ञासु का है॥ माया और अविद्या की उपाधि में जो चैतन्य ब्रह्म व्यापक ईश्वर और जीव कहलाता है सो तो ऐसा जाना जाता है कि अन्तःकरण में सतो गुण की विशेषता के समय ईश्वर और रजो गुण तमो गुण की अधिकता समय जीव होजाता है॥ उत्तर॥ माया और अविद्या एक नहीं है और किसी शास्त्र का यह मत नहीं है परमेश्वर की व्यापकता करके माया और अविद्या को एक समझना असंभव है सूर्य्य एक है और उसके प्रति बिंब अनेक घटों में परते हैं वे सब प्रतिबिंब एक नहीं हो सकते हैं एक घट का प्रति बिंब दूसरे से पृथक् है जिस घट में निर्मल जल है तो जल को दवाकर प्रतिबिंब प्रकाशता है किसी घट में गँदला जल है गँदलापन करके प्रतिबिंब सूर्य्य का आप रुव जाता है अन्तःकरण नाम मन बुद्धि आदिक का है सो जड़ विभूति में है और जीवात्मा चैतन्य विभूति में है अन्तःकरण न जीव हो सकता है न ईश्वर और अन्तःकरण की जो वृत्तियां सतरज तम मय उठती रहती हैं सो नाश को प्राप्त होती रहती हैं सो वे वृत्तियां भी ईश्वर जीव नहीं हो सकती हैं नाश होने से क्योंकि।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

ईश्वर और जीव को उपनिषद और गीता जीमें अजर अमर अविनाशी प्रति पादन किया है ॥ प्रश्न ॥ जितने जीव हैं उतने ही ईश्वर मानने होंगे अथवा एक जीव एक ईश्वर ॥ उत्तर ॥ यद्यपि एक जीव और अनेक जीव दो रीति करके वर्णन किया गया है एक जीव वाद वाले कहते हैं कि वास्तव में जीव आत्मा एकही है सब शरीरों के अन्तःकरण में पृथक् पृथक् गुणों करके छाया भया है सोई एक जीव अपना प्रकाश अनेक शरीरों में पहुंचाता है जिस्से चेष्टा व्यवहार की सिद्धि होती है परन्तु अन्तःकरण के गुण अवगुण शुद्ध मालिन करके चेष्टा और प्रकाश में पृथकता रहती है क्योंकि शरीर अन्तःकरण सबके न्यारे न्यारे हैं और गुण अवगुण शुद्धता और मलीनता तारतम्यता करके अन्तःकरण प्रति न्यारे न्यारे हैं जैसा कि सूर्य्य और सूर्य्य के प्रतिबिंब और घटका ऊपर हम कह आये हैं तैसे ही प्रतिबिंब आत्मा अनेक गुणों करके अनेक रीति से जैसा अन्तःकरण होता है तैसा भान होता है किसलिये कि संचित कृत के संस्कार करके ज्ञान अज्ञान शुद्धता मलीनता सुख दुःख द्रवता क्रूरता विद्या अविद्या आदिक शुभाशुभ गुण जो देह धारियों के कृत और सुभाव में

पृथक् पृथक् होते हैं सो एक जीव के होते और उस
के प्रकाश अन्तःकरण अनुसार होने से एक जीव भी
प्रति पादन हुआ है और न्यारे न्यारे प्रतिबिंब के दृष्टा-
न्त करके अनेक जीव भी माने गये हैं परन्तु किसी शा-
स्त्र करके ईश्वर अनेक और पृथक् पृथक् नहीं हो स-
कते ईश्वर ज्ञान स्वरूप अपने स्वरूप और दूसरों के
स्वरूप को जानता भया सर्व शक्तिमान् सर्वों के कर्मों का
फल दाता जग का कर्त्ता भर्त्ता हर्त्ता सर्व व्यापक स-
काही है नाना नहीं ॥ प्रश्न चौथा ॥ शुद्ध सत्व प्रधा-
न जो माया है और मायोपहित चैतन्य को ईश्वर वर्ण-
न किया और मलिन सत्व प्रधान तो अविद्या होती है
अविद्योपहित चैतन्य को जीव आपने कहा इससे जाना
जाता है कि यह मलीन सत्त्वमय शुद्ध सत्व होकर ईश्वर
होजाता है प्रथम तो यह शंका है कि जीव और ईश्वर ।
एक काल में सिद्ध नहीं होते दूसरे जो यह कहा जाय कि
जीवों की चेष्टा और संकल्पादिक का जानने वाला एक
ही ईश्वर माना जायगा तो जीव भी एक ही सिद्ध होगा
उत्तर ॥ जीव ईश्वर का विभाग और स्वरूप शा-
स्त्र ने एक रीति से वर्णन किया है एक तो यह है कि अ-
नादि और सकल कारण रूप से बनने वाली जो माया
और उस में चैतन्य का प्रतिबिंब ईश्वर है और थोड़े

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

देश काल में रहने वाली कार्य्य रूप जो आवरणशक्ति विक्षेप शक्ति युक्त और विद्या नामक उस में चैतन्य का प्रतिबिंब जीव है दूसरी रीति यह है कि अन्तःकरण में चैतन्य का प्रतिबिंब जीव और विद्या में चैतन्य का प्रतिबिंब ईश्वर एक अन्तःकरण अविछिन्न चैतन्य जीव है और अनेक अन्तःकरण अविछिन्न चैतन्य ईश्वर है जैसे मृत्तिका कारण है और घट आदिक कार्य्य हैं यह बात नहीं कह सकते एक ही वस्तु को घट रूप से कार्य्यता और मट्टी रूप से कारणता है तैसे ही माया को विशुद्ध सत्त्व प्रधानता रूप से कारणता और मलिन सत्त्व प्रधानता से कार्य्यता होती है जैसे घट के टूटने के पीछे केवल मट्टी ही रहती है तैसे ही मलीन सत्त्व के विशुद्ध सत्त्व में लीन होने से केवल माया रहती है मलीन सत्त्व में भी समष्टि विशुद्ध सत्त्व रूप रहने से एक काल में जीव ईश्वर दोनों सिद्ध हो सकते हैं जैसे एक काल में घट और मृत्तिका और जैसे घट सरवा आदिक बहुत मृत्तिका के कार्य्य हैं परन्तु जब वे मृत्तिका में लीन हो जावें तब केवल मृत्तिका ही रह जाती है घट मठ आदि से रुँके हुये आकाश अनेक रूप प्रतीत होते हैं परन्तु घट मठ आदि के नाश के पीछे एक ही महा आकाश रह जाता है इसी भांति कार्य्य अविद्या से रुँके हुये जीव

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तौ अनेक प्रतीत होते हैं परन्तु अविद्या के नाश होने
से अर्थात् माया में लीन होने से ईश्वर एक ही रहता
है इसलिये अनेक जीव सिद्ध होने पर भी अनेक ईश्व-
र मानने नहीं परते तात्पर्य्य यह है कि माया अना-
दि काल की है और अनिर्वाच्य है और सत्य भी नहीं
है क्योंकि ब्रह्मज्ञान हुये पीछे नहीं रहती और अस
त्य भी नहीं क्योंकि प्रपंच को दिखाती है आकाशादि
भूतों की प्रकृति जैसे घट के कारण मृत्तिका तैसे ही स-
ब प्रपंच की कारण माया चैतन्य से सम्बंध रखने वा-
ली ऐसी जो माया उस में चैतन्य का प्रतिबिंब सब जग-
ह व्यापक ईश्वर है अविद्या करके और आवर्ण शक्ति
और विक्षेप शक्ति करके अनन्त खण्डों में छोटे छोटे चि-
दंशों को जो जीव रूप कहलाये गये दिखाने वाली है
अर्थात् व्यापक में सर्व्वज्ञता सहित चैतन्य का प्रति
बिंब ईश्वर और खण्डों में अविद्या सहित चैतन्य का प्रतिबिं-
ब जीव है रज और तम इन दो गुणों से मलीन न भया
ऐसा जो सतोगुण उसका प्रधान रहना माया कहला-
ती है रजतम से मलीन अविद्या कहलाती है माया में
प्रतिबिंब ईश्वर अविद्या में प्रतिबिंब जीव है इस मत
करके माया के खण्ड भी नहीं ठहरते हैं एक ही मूल
प्रकृति संसार की रचने वाली है आवर्ण शक्ति ज्ञान।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

की रोकने वाली जीव की उपाधि है इसलिये जीव अप-
ने को भी नहीं जानता और जीवों को भी नहीं जानता
और ईश्वर को भी नहीं जानता और एक रीति यह भी
है कि माया कारण और अन्तः करण कार्य्य है तो का-
रण में चैतन्य का प्रतिबिंब ईश्वर और कार्य्य अन्तःक-
रण में प्रतिबिंब जीव है व्यापक आकाश जैसे घट से
रुका हुवा घटाकाश कहलाता है तैसे अन्तःकरण
में रुका हुवा चैतन्य अर्थात् अन्तःकरण अविच्छिन्न
चैतन्य ही जीव कहलावे है और कोई कहते हैं कि
प्रपंच को दिखाने वाला अज्ञान जब नष्ट होता है सु-
षुप्ति के समय जो ज्ञान प्रपंच का नहीं रहता सो स्थू-
ल रूप से नहीं है किन्तु सूक्ष्म रूप से है क्योंकि वोही
जीव जागने के पीछे फिर प्रपंच को देखता है और
वेदान्त वाक्यों से अनुभव होने के पीछे स्थूल सूक्ष्म
दोनों रूप से अज्ञान नष्ट होता है क्योंकि आत्मा के दृ-
ढ़ ज्ञान हुये पीछे प्रपंच का ज्ञान नहीं होता है सो जी-
व ब्रह्म में लीन होता है और कोई कहते हैं कि ईश्वर
का प्रतिबिंब जीव है और यह जीव ईश्वर के आधीन
है जैसे घट का प्रतिबिंब घट के आधीन घट के रहने से
रहेगा घट के न रहने से न रहेगा तैसे संसार में जीवों को
ईश्वर के आधीन मानना उचित है अज्ञान में प्रतिबिं-

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जीव जीव को अन्तःकरण उपाधिक कहते हैं अन्तःकरण उपाधिमान ने पर भी अज्ञान की भी जीव की उपाधि माननी होगी जो केवल अन्तःकरण ही उपाधि होता तो योगी अनेक देहों में कैसे भोग कर सकते अन्तःकरण तो एक ही देह में पहले से था और उसी से वह जीव कहलाया यह तो नहीं कह सकते कि योग के प्रभाव से योगी का अन्तःकरण सब देहों में रहने योग्य हो गया इसलिये एक ही जीव भी सिद्ध हो सकेगा क्योंकि वेदान्त सूत्र आदि में योगी योग के बल से अनेक अन्तःकरण का उत्पन्न कर्त्ता है यह कहा है तो अनेक अन्तःकरण होने से जीव भी अनेक मानने होंगे हमारे मत में अज्ञान एक होने से एक ही जीव मानना चाहिये और जो ईश्वर का प्रतिबिंब जीव को मानते हैं सो इस में भी संदेह है अन्तःकरण अविच्छिन्न चैतन्य जीव है सो अन्तःकरण रोकने वाला स्थूल सूक्ष्म दोनों रूप से नाश होता है तभी मुक्ति होती है इसलिये जीव ईश्वर का प्रतिबिंब नहीं मान सकते हैं प्रतिबिंब में बिंब से भेद झूंठा माना गया है और स्वरूप से तो वह सत्य है तो झूंठ माने हुये भेद का नाश यही मुक्ति है श्रुति में आत्मा को अविनाशी कहा है सो झूठे प्रतिबिंब पने के नाश होने से केवल चैतन्य

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

रहेगा सो सत्य ही है इतने ही तात्पर्य्य से ईश्वर से भिन्न जीव को कूटस्थ नहीं मान सकते और श्रुति में ईश्वर को अन्तर्यामी सब जीव आश्रित देहों में रहने वाला कहा है सो भी इसी मत में सिद्ध होगा और कोई ऐसा भी कहते हैं कि जिस में रूप नहीं उस का प्रतिबिंब नहीं हो सकता है इसलिये रूप रहित ईश्वर का प्रतिबिंब जीव को नहीं कह सकते हैं इसलिये घट से रुके हुये आकाश को जैसे घटाकाश कहते हैं तैसे अन्तःकरण से रुके हुये चैतन्य को जीव कहते हैं और जैसे किसी से न रुके हुए आकाश को महा आकाश कहते हैं तैसे ही अन्तःकरण से न रुके हुए चैतन्य को ईश्वर कहते हैं कोई यह कहते हैं कि जैसे कुन्ती का पुत्र कर्ण अपने को कुन्ती पुत्र न समझ के राधा पुत्र समझा था तैसे ही चैतन्य अविद्या वश अपने को जीव समझता है जैसे किसी राज पुत्र बालक को भील चुरा कर ले गये जब वह बड़ा भया और राजा के मंत्री ने पहिचान के उस को बोध कराया कि तुम भील नहीं हो किन्तु राज पुत्र हो तब वह आप को भील मानना छोड़ के राज पुत्र समझने लगा इसी भांति यह सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म अपने को जगत् का कर्त्ता और सर्वज्ञ समझने से ईश्वर भया अविद्या के वश सुखी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

दुःखी समझने से जीव भया जब सद्गुरु और वेदान्त
के वाक्यों ने समझाया कि तुम विकार हीन हो औ-
र तुम्हारा निज रूप इस भाँति करके सच्चिदानन्द है
तब यह भ्रम को छोड़ ब्रह्म रूप भया अर्थात् मुक्त भया
इसलिये जीव ईश्वर बिभाग दोनों कल्पित ही हैं अ-
ब जो यह बात पूंछते हो कि जीव एक है या अनेक हैं
इस में कई मत हैं कोई कहते हैं कि एक ही जीव है
और एक ही शरीर जीव से युक्त है अपर शरीर स्वप्न में
देखे शरीरों की समान है उसी के अज्ञान से यह सब
प्रपंच प्रतीत होता है उस जीव को स्वप्न रहने तक जै-
से स्वप्न में देखे भये पदार्थों का व्यवहार होता है उसी
भांति जब तक अविद्या रहती है तब तक प्रपंच व्यव-
हार रहता है और लोग इस मत में विश्वास न करके
क्योंकि ईश्वर ही जगत् का कारण वेद में सुना जाता
है और जीव से न्यारा ईश्वर है यद्यपि उस को इस प्र-
पंच से कुछ प्रयोजन नहीं तथापि लीला अर्थ का-
र्य करता है ऐसा जान कर एक ही हिरण्य गर्भ ब्रह्म
का प्रति बिंब मुख्य जीव है और जीव उसी हिरण्य ग-
र्भ के प्रति बिंब हैं जैसे एक ही पट में अनेक चित्र होते
हैं तैसे ही पट हिरण्य गर्भ है और उस पट के लिखे हु-
ये चित्र जीव की समान हैं कोई अन्तःकरण को जीव

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

की उपाधि मान के नाना अन्तःकरण होने से जीव को भी अनेक करके मानते हैं कोई यह कहते हैं कि जीवों में अज्ञान का रहना मन के आधीन है जब तक मन रहता है तब तक अज्ञान भी बना रहता है और मन के नष्ट होने से अज्ञान नष्ट हो जाता है यही मोक्ष है कोई ऐसा कहते हैं कि शुद्ध चैतन्य में अज्ञान नहीं रहता है किन्तु अन्तःकरण और प्रतिबिंब में जो अविद्या करके अपने निज स्वरूप को नहीं जानता है अज्ञान रहता है जिस जीव को ज्ञान होता है उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है सोई मुक्त है अपर जीवों को जो ज्ञान नहीं होता है सो वे जीव बद्ध हैं इसमें भी कोई कोई जीव की अविद्या न्यारी न्यारी मान कर अविद्या के नाश को ज्ञान से मुक्त और अविद्या के रहने में बन्ध मानते हैं और यह बात कि प्रपंच किस अविद्या से बना विचारी जाय तो जैसे अनेक तन्तु से एक पट बनता है तैसे सब की अविद्या करके प्रपंच बना तब एक जीव को ज्ञान होने से एक अविद्या अंश के नष्ट होने से सब प्रपंच नष्ट नहीं होता है जैसे एक तन्तु के नाश होने से सारे पट का नाश नहीं होता सो हे शिष्य ऐसा शास्त्रार्थ जीव ईश्वर के स्वरूप वाद में अपने अपने अनुभव अनुसार अनेक भांति करके और अनेक

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

युक्ति करके सज्जन विचार वानों ने प्रति पादन किया है और करते रहते हैं सो भी हमने तुझ से वर्णन कर दिया इस का तात्पर्य्य इतना ही जानो कि शुद्ध चैतन्य निर्गुण रूप परिपूर्ण एक ही है कोई अपनी इच्छा और भ्रान्ति करके जो शुद्ध सत्व प्रधान माया है तिस में आप प्रतिबिंब वत् हो ईश्वर सगुण स्वरूप सर्वज्ञ वही एक चैतन्य है नाना नहीं परन्तु अन्तःकरण अवच्छिन्न चैतन्य जिस को जीव कहते हैं और जीव का स्वरूप चैतन्य कूटस्थ और तिस का प्रतिबिंब बुद्धि में और बुद्धि वेदान्त में वर्णन हुआ है तिस को एक भी मानते हैं चैतन्य की एकत्वता करके और कोई कोई अनेक भी मानते हैं अन्तःकरण अवच्छिन्न होने से घटाकाश की नाईं सो ज्ञान से जब उपाधि और विकार अन्तःकरण के दूर हो जाते हैं तो फिर जीव संज्ञा नहीं रहती और नानात्व भी नहीं रहता वही अद्वय शुद्ध सच्चिदानन्द रूप ही रह जाता है सो हे शिष्य साधन मनन विचारादिक से अपने निज स्वरूप में वृत्तियों का प्रवाह रक्खो सो ऐसा करते करते ईश्वर अनुग्रह करके जब पूर्ण ज्ञान का प्रकाश हृदय में होगा तब फिर न कुछ कर्त्तव्य रहे न श्रोतव्य रहे न नानात्व रहे न जीव रहे न माया न ईश्वर केवल

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अपना ही आत्मा प्रकाशक भान होगा ॥ स्तुति माधव ॥ छन्द ॥ हे कारण ब्रह्मचिदानँद मय अज अद्वय नित्य निराकारं ॥ जय ज्ञाता ज्ञान स्वरूप अनादि अनन्त निजिच्छा साकारं ॥ निर्गुण निर्लिप्त निरावेदं सावेद सुगुण सोजग व्यापक ॥ मन बुद्धि गिरा गोतीत अगम द्रष्टा श्रोता प्रेरक वाचक ॥ जो अद्वय भांत अरूप अकर्ता सो भासत बहु विध रूपा ॥ सोइ जग कर्त्ता भर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता उर प्रेरक सुर भूपा ॥ विधिहू ते आदि सो मध्य वही सोइ अन्त अनन्त परात परं ॥ दीसत मन बुद्धि अगम अति सूक्ष्म सोपरि पूरण अति विस्तारवरं ॥ अस्थित सब काल सकल दिशि जो सब भूप चराचर में गुप्तं ॥ जिमि दूध में घृत सदा युक्तं अति अद्भुत शक्ती । निर्लिप्तं ॥ तुमहीं हो शक्ति तुम्हीं विष्णु तुम रुद्र गणेश दिनेश तुतं ॥ पुनि तुमहीं इन के कारण हो प्रभु तुम हो उपास्य उपासक तुम ॥ तुम हीं श्री राम तुम्हीं श्री कृष्ण अव्यक्त से धारी बहु व्यक्ती ॥ तुमहीं सीता राधा श्यामा भुवनेश्वरि विद्या बहु शक्ती ॥ तुम भूप प्रकृती भासक हो कूटस्थ सकल उर पुर वासी ॥ तुम ज्ञानाज्ञान प्रकाशक हो साक्षी सत चिद आनंद राशी ॥ रवि विधि नक्षत्रादिक तुम हो तुमहीं इन के सिरजन हारे ॥ पुनि आप जनावत हो तिनको द्रष्टा

ज्ञाता पुनिहो न्यारे ॥ तुमहीं हो सुगन्ध तुम्हीं हो पुष्प
तुम्हीं हो घ्राता पिता माता ॥ कर्त्ता हो अकर्त्ता कर्म
तुम्हीं भोगी हो अभोगी फल दाता ॥ तुमहीं हो वेद
तुम्हीं वेदज्ञ तुम्हीं विद्या तुम हो बुद्धी ॥ तुमहीं सत-
गुरु जिज्ञासू हो तुमहीं साधन तुम हो सिद्धी ॥ य-
द्यपि अविकार अकर्त्ता शुद्ध अलिप्त असंग सो श्रुति गा-
या ॥ तद्यपि विन सत्ता चैतन्य के क्या कर सकै है यह
जड़ माया ॥ निज इच्छा शक्ति कल्पना कर सत्ता भति
आप ही हो सर्वदा ॥ निरवयव तटस्थ अकर्त्ता तुम परि-
पूरण आप ही आप सदा ॥ तुमहीं हो पुरुष तुम्हीं प्र-
कृति तुमहीं हो प्रकृति प्रकाशक हो ॥ तुमहीं परमातम
ईश्वर तुम चिद अंत सट्टत्ती भासक हो ॥ भये सब
तुम ते सब में तुम हो तुम में है पुनि भवतीतं ॥ तुम
अद्वय अव्य अमर व्यापक यह भव सब कल्पित श्रुति
गीतं ॥ आदंत अदृष्ट प्रतीत मध्यमें नामरूप तन अ-
ध्यासा ॥ जिन मति हीजे विध मात पिता कर धायो जै-
सा अभ्यासा ॥ जग मिथ्या आतम सत पद मुन अचर-
ज सें बरणत समझत जन ॥ कोउ देखि सके नाहि मान
सके हैं थकित चित्त बुधि इन्द्री मन ॥ इन्द्री अन्तर का
विषय नहीं कारज कारण को क्या जांने ॥ कठपुतली
बाजी गर कु किहैं विधि देखे समझे पहिचाने ॥
CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

हे विभु चिदानँद सिन्धु विभू अज अव्य पुरातन करुणामय ॥ चिद सागर लहर चिदाभासी यह जीव भ्रमत है मैं तू मय ॥ प्रभु माया ताहि भुलाय सुवश भव-सागर माहूँ भ्रमावत है ॥ प्रभु सत्ता कर ये असत माया मर्कट की तुल्य नचावत है ॥ इन काठ पुतलिन संसारी की प्रभु हाथ तुम्हारे है डोरी ॥ छूटेंगे जब तव कृपा करो तुम खैंचोगे आपन ओरी ॥ बीते नाचत बहु जन्म गुसाँई न धोउन मिथ्या अभ्यासा ॥ निजरूपहि भूल यह दीन भया बश कामादिक देह अध्यासा ॥ निज गुण प्रकृति संचित वश हो पुनि पुनि दुख योनी माहूँ भ्रमत ॥ ममता तृष्णा चिंता कर के कबहूं नहिं शांति लहै मन चित्त ॥ तव माया प्रबल अमित स्वामी कामादिक तासु कुटुंब प्रबल ॥ पुनि संचित पाप अशुभ चिंतन मन विषयी चंचल बुद्धि समल ॥ यह जीव अबल अज्ञानी परि बाँधी है कमर रिपुता सबने ॥ शुभ कर्म विचार तितिक्षा को मेटत सरा सरा सुनिये ये विने ॥ मन मान अभिमान को खो दीजे और माया का छल बल छीजे ॥ निज पद की भक्ती रस दीजे मो को अपनो में गिन लीजे ॥ त्रय गुण मय प्रबल प्रकृत्ती कर चिद ग्रंथी लग भया संसारा ॥ तुम माया यंत्र भ्रमावत हो सब को प्रभु आप सो

उच्चारा ॥ प्रभु माया बाँधेउ बहु बिधि चिद आभासी
कोसो है जीवा ॥ पुनि छूटन हेतु रचे गुरु वेद उपदेश-
क प्रभु करुणा सीवा ॥ वरणी दोउ विधि भक्ती सा-
धन पुनि साधन ज्ञान अनेक प्रभुः॥ मीमांसा सां-
ख्य पतंजलि श्रुति स्मृति योग अष्टांग विभुः॥ पुनि
श्रद्धा बुद्धि विवेक स्मृति सकल उर देहु सो आप प्रभुः॥
कालिस्त माया कर देहु भुलाय चिदानँद रूप ही ज्ञान
विभुः॥ तव शक्ति अचिन्त्य अमित रचना नहिं पहुँच
सकै बुधि तेहि सीवा ॥ मिश्रित गुण दोष समुद्र परा व-
श होय प्रकृति यह जीवा ॥ सो अति दुस्तर और यह
परतंत्र बने साधन कस हे स्वामी ॥ अष्टादश अन्त बच-
न प्रभु कर अवलंब यही अन्तरयामी ॥ जो त्याग सक-
ल धर्मों को आवत शरण गति मुझे अद्वय की ॥ ताको
मैं छोड़ाय सकल पापन ते देहूं उत्तम शुद्ध गती ॥
निज आश्रित शरण श्रद्धा दीजै करि करुणा करुणा
कर रामा ॥ अन्त सहो शुद्ध जमें वृत्ती सत चिद आनँद
में सुख धामा ॥ हौं दूर असन्तन के गुण उर से सन्तोष
लक्षण उपजें मन में ॥ निज आपा में तू भूल जगत होम-
गन प्रेम आनँद घन में ॥ कोउ आर्त्ति कोउ अर्थार्थी जन
कोउ जिज्ञासू कोउ है ज्ञानी ॥ कोउ कर्मेष्टी कोउ संन्या-
सी कोउ देवि उपासक है ध्यानी ॥ कोउ शैवी वैष्णव

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

आचारी योगी कोउ शरणागति माना ॥ इस दास ॥
युगल मेंनहिं कोउ गुण ममता मय है अय गुण साना॥
पुनि होके साहि तुम्हारा है तुम में हैतु मंते नहिंन्यारा
निज हद्द से भार निहार अपन दिशि कृपा करो तो हो
पार ॥ टुक दृष्टि अनुग्रह स्वामी से ममता मिट दृढ़ मन
ऐसी हो ॥ हो नाहीं पुनि है नाहिं जगत परि पूरण अद्वय
आपहि हो ॥ इति श्री युगल संवाद ज्ञान साधन
समाप्तम् ॥ शुभम् ॥

इति ॥

नामकिताब	नामकिताब	नामकिताब	नामकिताब
७-उत्तरकाण्ड	आनन्दरघुनन्दन	गंगालहरी	सतीबिलास
रामायणशब्दार्थ-	वेदान्त	यमुनालहरी	मुतफ़र्क़ात
कोष	योगवाशिष्ठ	जगद्बिनोद	ज्ञानिश्वर कीक
रामायणकाइतिहास	आनन्दामृतवर्षिणी	शृंगारबत्तीसी	ज्ञानमाला
रामायणमानसदी-	सांख्यतत्त्वकौमुदी	राग	गोपीचन्दभरत
पिका	काव्य	रागप्रकाश	कथाश्रीगंगाजी
रामायणकविताव-	सूरसागर	लावनी	अवधयात्रा
ली	कृष्णसागर	क़िस्सावग़ैरह	भरतरीगीत
रामायणगीतावली	विश्रामसागर	आनार्थनवसंग्रहाव	दानलीला व मान
रामायणतुलसी-	प्रेमसागर	ली	लीला
कृतटीकासुखदेव-	ब्रजबिलासचौ-व-	ब्रह्मसार	दोहासखीरत्नाव
रामायणतुलसीकृ	कृष्णप्रिया	शिवसिंहसरोज	गोकर्णमाहात्म्य
तटीकारामचरणदा-	विज्ञानमुक्तावली	भक्तमाल	श्रीगोपालसहस्र
बिनयपत्रिकाबाबै-	अनेकार्थ	इन्द्रसभा	नाम
बिनयपत्रिकाबाशि	छन्दोर्णवपिंगल	बिक्रमबिलास	कथासत्यनाराय
लिंगपुराण	कविकुलकल्पतरु	बैतालपच्चीसी	हनुमानबाहुक
बिष्णुपुराण	रसराज	पद्मावतीखण्ड	जनकपच्चीसी
ब्रह्मोत्तरखण्ड	सतसईकूलतथास-	शुकबहत्तरी	हरिहरसगुणनि
बाराहपुराण	सभाबिलास	बकावलीसुमन	रामपदावली
भविष्योत्तरपुराण	तुलसीशब्दार्थप्र०	चहारदरवेश	बनयात्रा
सुदामाचरित्र	भजनावली	क़िस्साहातिमताई	कायस्थवर्णनिर
रसवृष्टिपरसचंद्रोदय	प्रेमरत्न	अपूर्वकथा	बिहारबृन्दाबन
शुक्रनीति	युगलबिलास	क़िस्सागुलसनोबर	सभाबिहारवृन्दा
नाटक	चित्रचन्द्रिका	सहस्त्ररजनीचरित्र	बन
प्रबोधचन्द्रोदय	बारहमासाबलदेव	रविंसनकाइतिहास	कल्पभाष्य
रामाभिषेक	मनोहरलहरी	सीताहरण	सिंहासनबत्तीसी

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

नाम किताब	नाम किताब	नाम किताब	नाम किताब
दरसी	दैवज्ञाभरण	**ज्योतिष**	भगवद्गीताटीका
अक्षरावली	ज्ञान स्वरोदय	मुहूर्त्त गणपति	आनन्दगिरि
स्वयम्बोध	रमलसार	मुहूर्त्त चक्र दी-	गीत गोविंद
ज्ञान चालीसी	इन्द्रजाल	पिका	कथा सत्य नारा-
रेखावली	**संस्कृत की पुस्तकें**	मुहूर्त्तचिन्तामणि	यण
बालाबोध	लघुकौमुदी	मुहूर्त्त मार्त्तण्ड स-	परमार्थसार
विद्यार्थी की प्रथम	सिद्धान्त चन्द्रिका	टीक	पाराशरी सटीक
पुस्तक	अमरकोष तीनों का-	मुहूर्त्त दीपक	शीघ्रबोध सटीक
किताबजंत्री	ण्ड सटीक	बृहज्जातक स-	लघुजातक
गणित कामधेनु	पञ्चमहायज्ञ	टीक	षट्पंचाशिका
लीलावती	निर्णयसिन्धु	जातकालंकार	सामुद्रिक
पटवारियों की पु-	संग्रहशिरोमणि	जातकाभरण	गरुड़ पुराण
स्तक ४ भाग	भगवद्गीता मूलबस-	होरामकरन्द	राम विवाहोत्सव
वैद्यक भाषा	माधवनिदान	**संस्कृत उर्दू टीका स-**	रमल भाषा
निघण्ट	दुर्गापाठ सब मूल	मनुस्मृति	पद्मावत
अमर विनोद	कायस्थ कुलभा-	विष्णु हारीत	बाल्मीकीय रामा-
वैद्यजीवन	स्कर	महिम्न स्तोत्र	यण भाषा
औषध संग्रह क-	विष्णु भागवत	व्रतार्क	किस्सा मर्द औरत
ल्पवल्ली	अपराध भंजन स्तो-	याज्ञवल्क्य स्मृति	नवरत्न
अमृतसागर ब. छो-	त्र	भगवद्गीता	महा रामायण
वैद्यमनोत्सव	कायस्थ धर्म नि-	**संस्कृत भाषा टी-**	दुर्गायण
दिल लगन	रूपण	अमरकोष	नवीन संग्रह
हुल्लासुल गुर्बा	नया छोटा	याज्ञवल्क्य स्मृति	रासलीला द्वारका
ज्योतिष भाषा	मथुरा सभा	संध्या पद्धति	प्रसाद कृत
जातक चन्द्रिका	भाषातत्त्वप्रकाश	व्रतार्क	**इति**
जातकालंकार	मार्कण्डेय पुराण	भगवद्गीता टीका-	

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor